# कल्याण



उमा-इन्द्र-संवाद





काशीमुक्ति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्येकवासं शिवम्।

सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥ वर्ष

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, फरवरी २०१८ ई०

पूर्ण संख्या १०९५

卐

卐

卐

Si Si

卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

### काशीमुक्ति

रामेण सद्शो देवो न भूतो न भविष्यति॥××× 卐 अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा। स्वयं जप्त्वोपदिशति जन्तूनां मुक्तिहेतवे॥ 卐 यस्तारयेन्मनुः। स एव तारकस्त्वत्र राममन्त्रः प्रकथ्यते॥ संसारार्णवसंमग्नं 卐 卐 ×××अन्तकाले नणां रामस्मरणं मुहर्मुह:॥ च 卐 कुर्वन्त्यपदेशं मानवा मुक्तिहेतवे। अन्यच्चापि शववाहै: सदा लोकैर्मृहर्मृह:॥ 卐 रामनामैव मुक्त्यर्थं शवस्य पथि कीर्त्यते। रामनाम्नः परो मन्त्रो न भृतो न भविष्यति॥

रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न होगा ही।××× इसीलिये काशीमें विश्वनाथ भगवान् शंकर निरन्तर 'राम'नामका स्वयं जप करते हैं और प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया करते हैं। संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यको जो मन्त्र तार देता है, वही तारकमन्त्र राममन्त्र कहलाता

है।××× मनुष्योंकी मुक्तिके लिये लोगोंके द्वारा अन्तिम समयमें उनसे बार-बार यही कहा जाता है कि रामका स्मरण करो, रामका स्मरण करो। इसी प्रकार शव-वहन करनेवाले लोगोंके द्वारा मृतप्राणीकी मुक्तिके लिये शवयात्रामें बार-बार रामनामका ही उच्चारण किया जाता है। रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आजतक

िलये शवयात्रामें बार-बार रामनामका ही उच्चारण किया जाता है। रामनामसे श्रे
 हुआ है और न होगा ही। [आनन्दरामायण]

卐

卐

卐

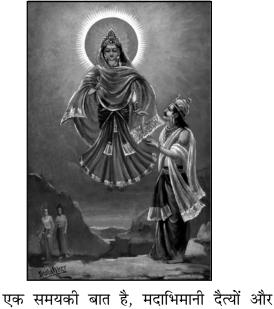
卐

卐

卐

<b>पृष्ठ-संख्या</b> तत्त्वदर्शी')२१
•
तत्त्वदर्शी')२५
२ ( -न्द्रजी तिवारी) ३ ( हात्म्य ही, ३ ( धर्मरत्न) ३ ( मि सजी चतुर्वेदी) ३ ( काउण्टेंट) ३ ( ४ ( ४ ( ४ ( ४ ( ४ ( ४ ( ४ ( ४
५०
आवरण-पृष्ठ मुख-पृष्ठ ६ ३३ ३५
पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०
। तथा प्रकाशित
235400242/244

संख्या २ ] कल्याण याद रखो — सच्चे संत भगवत्स्वरूप ही होते हैं। विपरीत वे संतजन दूसरोंके यथार्थ हितके लिये हँसते-हँसते भगवानुकी भाँति संत भी स्वभावसे सबके सृहद् हैं, सब अपने शरीर तथा जगत्के माने हुए सर्वस्वको न्योछावर कर उन्हींमें हैं, वे सबमें हैं, सबके हैं और सबसे पृथक् भी देते हैं। पर अपने ऊपर आये हुए सुख-दु:खकी ओर वे हैं। यह सब इसीलिये कि वे भगवान्को प्राप्त हैं। दुष्टिपात ही नहीं करते। उनके ऐसे व्यवहारमें विषमता याद रखो—सच्चे संत विश्वके आधार हैं. विश्वके दीखनेपर भी उनके अन्दर नित्य निर्दोष समता रहती है। न आराध्य हैं, विश्वरूप हैं, विश्वकी रक्षा हैं और विश्वकी तो उन्हें कोई बड़े-से-बड़ा सुख ही विचलित कर सकता है शोभा हैं। वे धर्मस्वरूप हैं, धर्ममय हैं और धर्मकी रक्षा और न भयानक-से-भयानक दारुण दु:ख ही। हैं। उनके द्वारा स्वभावसे ही ऐसी क्रियाएँ होती हैं, जिनसे *याद रखो*—मान-अपमान, स्तृति-निन्दा और लाभ-विश्व तथा धर्मकी रक्षा होती रहती है। इतनेपर भी वे हानि-सभी द्वन्द्वोंमें संत सम रहते हैं। वे मान, स्तृति तथा लाभमें हर्षसे फूलते नहीं और अपमान, निन्दा तथा हानिमें विश्वसे सदा परे होते हैं। याद रखो — संतमें अहंकार लेश भी नहीं होता, इसीसे विषादसे अपने स्वरूपको भूलते नहीं। पर यथायोग्य वे अपने पुरुषार्थसे भगवत्प्राप्तिका दावा नहीं करते। वे भगवत्-व्यवहार करनेमें सक्चाते भी नहीं। न तो वे मान, स्तृति और लाभको स्वीकार करनेमें डरते हैं और न अपमान, प्राप्तिमें भगवत्कृपाको ही मुख्य मानते हैं। उनका पुरुषार्थ वस्तुत: भगवत्कृपासे ही संचालित और उससे अभिन्न होता है। निन्दा और हानिका प्रतिकार करनेमें ही स्वरूपकी हानि याद रखों—संत भगवान्की ही भाँति दयाके समुद्र समझते हैं। ऐसा करते हुए भी वे इनसे सदा परे, निर्लिप्त होते हैं, वे स्वभावसे ही सबके सुहृद् होते हैं। उनकी दयामें तथा नित्य निर्विकार रहते हैं। न कायरता होती है, न ममता; न स्वार्थ होता है, न भय; न याद रखो—संत स्वभावसे ही क्षमा, प्रेम, सन्तोष, कामना होती है, न अभिमान। जैसे सुर्य स्वभावसे ही कल्याण, करुणा और सदाचारकी मूर्ति होते हैं, वे सदा विश्वको प्रकाश देता है, वैसे ही संत विश्वके प्राणियोंपर सन्तापहीन, आनन्दमय तथा शान्तिके भण्डार होते हैं और दया करते हैं। पर संत बड़े दूरदर्शी या सर्वदर्शी होते हैं। अपने स्वाभाविक आचरणोंके द्वारा जगत्के प्राणियोंका अत: उनकी दया भी परिणामके यथार्थ हितको ही देखती सन्ताप हरते हुए उनमें क्षमा, प्रेम, सन्तोष, कल्याण, है। इसलिये संत अत्यन्त मृदुस्वभाव तथा नित्य दयासे करुणा, सदाचार, आनन्द और शान्तिका प्रचार, प्रसार और द्रवित रहनेपर भी कहीं-कहीं बड़े कठोर-से प्रतीत होते हैं। विस्तार करते रहते हैं। याद रखो — संतोंके लिये कुछ भी कर्तव्य या विधि-*याद रखो*—संत सर्वथा समभावापन्न, समतामय, मूर्तिमान् समत्व ही होते हैं। वे किसीमें कुछ भी आसक्ति न निषेध न होनेपर भी वे बडे कर्तव्यपरायण और विधिका रखते हुए भी सबके प्रति निश्छल प्रेम करते हैं। साधारण अनुसरण करनेवाले होते हैं। उनमें बसी हुई लोककल्याणकारिणी मनुष्यको शरीरके चाहे किसी भी अंगमें कोई सुख-दु:ख वृत्ति उनके द्वारा निरन्तर ऐसे कार्य करवाती है, जिससे जगतुका कल्याण हो। वे वृत्तियोंसे परे एवं नित्य स्वरूपस्थित हो, जैसे उसकी समान-रूपसे अनुभृति होती है; क्योंकि उसकी समस्त शरीरमें अहंकार और ममतायुक्त समता होती रहते हुए ही सावधान साधककी भाँति सदा शुभ आचरण है। वैसे ही संतकी समस्त जीव-समूहोंमें अहंकार और करते हैं। ग्रहण-त्यागकी परिधिसे परे एवं होते हुए भी ममतासे रहित स्वभाविक समता होती है। वे दूसरे समस्त शुभका ग्रहण और अशुभका त्याग करते हैं। इसीलिये जीवोंके सुख-दु:खमें सुखी-दुखी-से होकर प्राणोंकी बलि उनका जीवन अन्य लोगोंके लिये आदर्श होता है। देकर भी उनके दु:खोंको दूर करते और सुखोंको बढ़ाते हैं। याद रखो—सभी सच्चे संत अन्दरसे वस्तृत: ऐसे विषयी लोग जहाँ अपने भ्रमात्मक स्वार्थके लिये दूसरेका होनेपर भी सबके बाहरी आचरण ऐसे ही हों-एक-से ही चाहे जैसा अहित करनेमें भी नहीं सकुचाते, ठीक इसके हों, यह आवश्यक नहीं है। 'शिव'



देवताओंके बीच भयंकर युद्ध हुआ। यह विस्मयकारक युद्ध लगातार सौ वर्षोंतक चलता रहा। उस समय देवताओंपर भगवती आदिशक्ति कृपालु थीं, अत: उनकी इस महासंग्राममें विजय हुई। दानव पराजित होकर पृथ्वी और स्वर्गको छोडकर पाताललोकमें चले गये। दैत्योंके

पराजित हो जानेपर देवता विजयके मदमें चूर होकर सर्वत्र अपने पराक्रमका बखान करने लगे। देवताओं के अहंकारको नष्ट करनेके लिये भगवती

आदिशक्ति उमा उनके समक्ष यक्षके रूपमें प्रकट हुईं। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान था। देवराज इन्द्रने अग्निको उस तेजस्वी यक्षका परिचय जाननेके लिये भेजा। अग्निदेव इन्द्रके आदेशसे यक्षके पास पहुँचे। यक्षने अग्निसे कहा—'मेरा परिचय जाननेके

अग्निने कहा—'मैं जातवेदा अग्निदेव हूँ। अखिल विश्वको जला डालनेकी मुझमें शक्ति है। अग्निके इस प्रकार कहनेपर यक्षने उनके सामने

पूर्व तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो।' इसपर

एक तुण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको जला डालनेकी तुममें शक्ति है तो पहले इस तृणको जलाकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किंतु उसे भस्म न कर

सके। अन्तमें लज्जित होकर वे इन्द्रके पास लौट गये और उनसे वहाँका सारा समाचार बताया। तदनन्तर

तुमसे यह सारा जगत् ओतप्रोत है। तुम ही प्राणरूप होकर अखिल प्राणियोंका संचालन करते हो। अत: अब

तुम ही जाकर इस यक्षका पता लगाओ।' इन्द्रको अपनी प्रशंसा करते देखकर वायुदेव अभिमानसे भर गये। वे तुरंत यक्षके सन्निकट गये।

देवराज इन्द्रने वायुको बुलाया और कहा—'वायुदेव!

न सके तथा लिज्जत होकर इन्द्रके पास लौट आये।

गये, किंतू तेजस्वी यक्ष उसी क्षण अन्तर्धान हो गया।

उन्होंने यक्षसे कहा—'मैं मातिरश्वा वायुदेव हूँ। मेरी चेष्टासे ही जगत्के सम्पूर्ण व्यापार चलते हैं।' यक्षने उनसे भी एक तृणको उड़ानेके लिये कहा, पर वायुदेव अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगानेके बाद भी उस तृणको हिला

तब सम्पूर्ण देवताओंने इन्द्रसे कहा—'देवराज! आप हमलोगोंके स्वामी हैं, अत: यक्षके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिये अब आप ही प्रयत्न करें।' अन्तमें देवराज इन्द्र अभिमानसे यक्षके सन्निकट

देवराज इन्द्र इस घटनाको देखकर लज्जासे डूब गये। उनका अभिमान नष्ट हो गया। तदनन्तर भगवती उमाने उन्हें दर्शन दिया। तब इन्द्रने करुण स्वरमें भगवतीकी नाना प्रकारसे स्तृति की और यक्षका परिचय बतानेकी

प्रार्थना की। भगवतीने इन्द्रसे कहा—'देवराज! मेरी ही शक्तिसे तुमलोगोंने दैत्योंपर विजय प्राप्त की है। अभिमानवश तुम्हारी बुद्धि अहंकारसे आवृत हो गयी

थी। अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मेरा ही अनुत्तम तेज यक्षरूपमें प्रकट हुआ था। वस्तुतः वह मेरा ही था। तुमलोग अभिमान त्याग करके मुझ

सिच्चदानन्दस्वरूपिणी देवीके शरणागत हो जाओ।' इस प्रकार इन्द्रको शिक्षा देकर तथा देवताओंके द्वारा सुपूजित होकर वे भगवती आदिशक्ति उमा वहीं अन्तर्धान

दिखाओ।' अग्निदेवने उस तृणको भस्म करनेके लिये हो गर्यी। [शिवपुराण ] Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

भगवान्की प्राप्तिके कुछ सरल और निश्चित उपाय संख्या २ ] भगवान्की प्राप्तिके कुछ सरल और निश्चित उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) आस्तिकभाव या भगवान्की सत्तामें विश्वास वंचित क्यों? भगवान्की ओरसे तो कोई कमी है ही भगवान्के स्वरूपका ज्ञान न होनेपर भी भगवान्की नहीं, जो कुछ विलम्ब होता है, वह हमारे साधनकी सत्तामें (होनेपनमें) जो विश्वास है, उससे भी परमात्माकी कमीके कारण ही होता है और उस साधनकी कमीमें प्राप्ति हो सकती है; किंतु यह विश्वास पूर्णरूपसे होना हेतु है विश्वासकी कमी तथा विश्वासकी कमीमें हेतु है चाहिये। मनुष्यके मनमें भगवान्के अस्तित्वका विश्वास अज्ञता यानी मूर्खता। ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-ही-त्यों वह भगवान्के अतएव हमको यह विश्वास बढ़ाना चाहिये कि समीप पहुँचता जाता है। किसीको भगवान्के सगुण-भगवान् निश्चय हैं, वे अबतक बहुतोंको मिल चुके हैं, निर्गुण, साकार-निराकार किसी भी स्वरूपका वास्तविक वर्तमानमें मिलते हैं एवं मनुष्यमात्रका उनकी प्राप्तिमें अनुभव नहीं है; किंतु यह विश्वास है कि भगवान् हैं अधिकार है। अपात्र होनेपर भी दयामय भगवान्ने मुझको और वे सब जगह व्यापक हैं; वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, मनुष्य-शरीर देकर अपनी प्राप्तिका अधिकार दिया है। परम प्रेमी और परम दयालु हैं, वे पतितपावन और ऐसे अधिकारको पाकर मैं भगवानुकी प्राप्तिसे वंचित रहूँ अन्तर्यामी हैं। हम जो कुछ कर रहे हैं, उसे भगवान् देख तो यह मेरे लिये बहुत ही लज्जा और दु:खकी बात है। रहे हैं, जो कुछ बोल रहे हैं, उसे वे सुन रहे हैं तथा बार-बार इस प्रकार सोचने-समझनेपर भगवान्के होनेपनमें जो कुछ हमारे हृदयमें है, उसे भी वे जान रहे हैं। इस उत्तरोत्तर भक्तिपूर्वक विश्वास बढ़ता चला जाता है, प्रकार विश्वास हो जानेपर उस साधकके द्वारा झूठ, जिससे उसके मनमें भगवान्को प्राप्त करनेकी आकांक्षाका कपट, चोरी, बेईमानी, हिंसा, व्यभिचार आदि भगवान्के उदय हो जाता है, तदनन्तर आकांक्षामें तीव्रता आते-आते विपरीत आचरण नहीं हो सकते। इस विश्वासकी उसको भगवान्का न मिलना असह्य हो जाता है, अतएव उत्तरोत्तर वृद्धि होनेपर विरुद्ध आचरणकी तो बात ही वह फिर भगवान्की प्राप्तिसे वंचित नहीं रहता। तीव्र क्या है, उसके द्वारा यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, इच्छा उत्पन्न होनेपर भगवान् उससे मिले बिना रह नहीं सेवा, जप, ध्यान, पूजा, पाठ, स्तुति, प्रार्थना, सत्संग, सकते। जो भगवान्से मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर हो स्वाध्याय आदि जो कुछ सत्-चेष्टा होगी, वह भगवान्के जाता है, उसके लिये एक क्षणका भी विलम्ब भगवान् अनुकूल और उनकी प्रसन्नताके लिये ही होगी। उसके कैसे कर सकते हैं? अतएव भगवान्के अस्तित्वमें हृदयमें क्षमा, दया, शान्ति, समता, सरलता, संतोष, विश्वास उत्तरोत्तर तीव्रताके साथ बढ़ाना चाहिये। इस भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि भाव भगवान्के अनुकूल और भक्तिपूर्वक विश्वासकी पूर्णता ही परम श्रद्धा है। परम उत्तम-से-उत्तम होंगे। भगवानुके अस्तित्वमें जो भक्तिपूर्वक श्रद्धाके उदय होनेके साथ ही भगवान्की प्राप्ति हो जाती विश्वास है, इसीका नाम 'श्रद्धा' है। भगवानुके गुण, है, फिर एक क्षणका भी विलम्ब नहीं हो सकता। हमारे प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझनेसे जब साधककी भगवान्में श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही भगवान्की प्राप्तिमें विलम्ब परम श्रद्धा हो जाती है तब उसके हृदयमें प्रसन्नता और होनेका एकमात्र कारण है। शान्ति उत्तरोत्तर बढ़ते चले जाते हैं। कभी-कभी तो शास्त्र और महात्माओंपर श्रद्धा शरीरमें रोमांच और नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगते हैं तथा शास्त्र और महात्माओंपर विश्वास होनेपर भी हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। कभी-कभी विरहकी परमात्माकी प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो सकती है। शास्त्र व्याकुलतामें वह अधीर-सा हो जाता है। उसके हृदयमें कहते हैं कि 'भगवान् हैं' और महात्मा भी कहते हैं कि यह भाव आता है कि जब भगवान् हैं तो हम उनसे 'भगवान् हैं।' शास्त्रके वचनोंसे भी महात्माके वचन

भाग ९२ \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* \* विशेष बलवान् हैं; क्योंकि महात्मा तो साक्षात् परमात्माका श्रद्धालुके मनके विपरीत प्रतीत हो, परंतु वह मन मारकर दर्शन करके ही कहते हैं कि 'भगवान् हैं' और महात्मा उसे मान ले तो यह भी श्रद्धा नहीं है। मनके विपरीत होनेपर भी महात्माकी आज्ञाको श्रद्धालु प्रसन्नतासे कभी झुठ कहते नहीं। जो झुठ बोलते हैं, वे तो महात्मा ही नहीं। यदि महात्मा यह कहते हैं कि 'भगवान् हैं और इस पालन करता है, जैसे राजा युधिष्ठिर आदि पाँचों विषयमें शास्त्र प्रमाण है' तो इस प्रकारका महात्माका भाइयोंने द्रौपदीके साथ विवाह करनेके विषयमें माता वचन तो शास्त्रके समान ही है, किंतु शास्त्रका प्रमाण न कुन्तीके वचनका शास्त्रके अनुकूल न होनेपर भी देकर यदि महापुरुष कहें कि 'भगवान् निश्चय हैं' तो यह प्रसन्नता और आग्रहके साथ अनुसरण किया था— वचन और भी बलवान् है, शास्त्रके प्रमाणसे भी बढ़कर इसका नाम 'श्रद्धा' है। वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डमें लिखा है है; क्योंकि बिना प्रत्यक्ष किये महात्मा ऐसा नहीं कहते। अतएव महात्माके मनके अनुसार चलनेवालेका कि वनगमनके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है, उनके माता कौसल्याके पास गये और उन्होंने पिताकी आज्ञासे संकेत (इशारे) और आदेशके अनुसार आचरण करनेपर वनमें जानेकी बात कही। तब माता कौसल्याने कहा— भी निश्चय ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। जबकि 'पिताकी आज्ञा वनमें जानेकी है किंतु मेरी आज्ञा है, तुम शास्त्रके अनुकूल चलनेसे भी कल्याण हो जाता है तो वनमें मत जाओ।' यह सुनकर भगवान् रामने कहा-फिर महापुरुषोंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार चलनेसे 'पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं या उनका अनुकरण करनेसे कल्याण हो जाय, इसमें तो है। अत: मैं आपकी अनुमति लेकर वन जाना चाहता हूँ।' भगवान् रामकी दशरथजीमें जो यह श्रद्धा है, यह कहना ही क्या है, किंतु महात्माके वचनोंमें परम श्रद्धा होनी चाहिये। मान लीजिये, किसी महात्माने किसी 'परम श्रद्धा' है। श्रद्धा दिखानेवाले पुरुषसे कहा कि 'अमुक संस्थामें एक आयोदधौम्य मुनिने एक दिन अपने शिष्य आरुणिसे बोरा गेहँ और दस कम्बल भिजवा दो।' इसपर उस कहा—'तुम खेतमें जाकर नीचे बहे जानेवाले जलको श्रद्धालुने अपनी बुद्धि लगाकर उत्तर दिया कि 'इस रोक दो।' उसने वहाँ जाकर उस जलको मिट्टीसे समय न तो कम्बलका मौसम है, न उनकी माँग है और रोकनेकी बहुत चेष्टा की, किंतु उसे सफलता नहीं हुई। न आवश्यकता ही है।' तब महात्मा बोले—' अच्छी बात वह मिट्टीकी मेंड़ बनाता और जलका प्रबल प्रवाह उसे है, गेहूँ ही भिजवा दो।' श्रद्धालुने कहा—'अभी यहाँ बहा देता। जब प्रवाह रुका ही नहीं, तब आरुणि स्वयं गेहूँके दाम महँगे हैं, पाँच दिनों बाद दाम कम हो जायँगे; वहाँ लेट गया, जिससे जलका बहना बन्द हो गया। दूसरे प्रदेशोंमें बाजार गिर गया है और यहाँ भी तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर गुरुजीने शिष्योंसे पूछा— गिरनेवाला है; अतएव भाव गिरनेपर भेज देंगे।' इसपर 'आरुणि कहाँ गया?' उन्होंने कहा—'आपने ही तो महात्माने कहा—'बहुत अच्छा। तुम ठीक समझो, तभी खेतका पानी रोकनेके लिये उसे भेजा है।' यह सुनकर भिजवा सकते हो।' इसका नाम 'श्रद्धा' नहीं है; क्योंकि आयोदधौम्य मुनि बोले—'अभीतक आरुणि लौटकर यहाँ वह श्रद्धालु महात्माके आदेशका श्रद्धापूर्वक ज्यों-नहीं आया, अतः चलो, हम सब भी वहीं चलें।' का-त्यों पालन न करके अपनी बुद्धिसे काम लेता है तदनन्तर वे उसी समय शिष्योंको साथ लेकर वहाँ पहुँचे, और महात्मा अपनी सहज समतासे उसमें सहमत हो जहाँ आरुणि स्वयं मेंड बनकर जलको रोके हुए था। जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें श्रद्धालुकी जो श्रद्धा होती है, मुनिने कहा—'वत्स आरुणि! तुम कहाँ हो, यहाँ आओ।' यह सुनकर आरुणि उठकर गुरुके पास आया उस श्रद्धाका कोई मूल्य नहीं; तथा महात्माकी आज्ञा और हाथ जोड़कर कहने लगा—'आपकी आज्ञासे मैंने यदि श्रद्धालुके अनुकूल पड़ती है और श्रद्धालु उसे मान लेता है, यह भी श्रद्धा नहीं है एवं महात्माकी आज्ञा जल रोकनेका प्रयत्न किया, किंतु जब जल न रुका तो

संख्या २ ] भगवान्की प्राप्तिके कुछ	सरल और निश्चित उपाय ९
\$	**************************************
मैंने स्वयं ही लेटकर जलको रोक रखा था। आपके	गायोंको लेकर गुरुके पास पहुँचा तो उसके चेहरेकी
वचन सुनकर अब मैं वहाँसे उठकर आ गया हूँ और	चमक और शान्तिको देखकर गौतमने कहा—'सत्यकाम!
आपको प्रणाम करता हूँ, अब आपकी क्या आज्ञा है?	तुम्हारा चेहरा देखनेसे प्रतीत होता है, मानो तुम्हें ब्रह्मका
जलको रोके रखूँ या दूसरा कोई कार्य करूँ?' गुरुजीने	ज्ञान हो गया है।' सत्यकाम बोला—'ठीक है। किंतु
कहा—'तुम बाँधका उद्दलन करके निकले हो, अत: तुम	फिर भी मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ।' तब गुरुने
'उद्दालक' नामसे प्रसिद्ध होओगे।' फिर आचार्यने	भी उसे उपदेश दिया। यह है उच्चकोटिकी श्रद्धा।
कृपापूर्वक कहा—'तुमने मेरे वचनोंका पालन किया है,	अपने मनके विपरीत भी गुरुके आदेशको प्रसन्नताके
इसलिये तुम कल्याणको प्राप्त होओगे और सम्पूर्ण वेद	साथ काममें लाया जाता है, यह श्रद्धा और अपने मनके
तथा समस्त धर्मशास्त्र तुम्हारे लिये स्वतः ही प्रकाशित	अत्यन्त विपरीत आदेश सुनकर भी उसके अनुसार
हो जायँगे।' गुरुजीका वरदान पाकर आरुणि अपने	करनेमें अतिशय प्रसन्नता हो अर्थात् इधर गुरुकी
देशको लौट गये। श्रद्धाके प्रभावसे उन्हें बिना ही पढ़े	आज्ञाकी विपरीतताकी भी कोई सीमा नहीं और उधर
सारे वेदोंका ज्ञान हो गया।	उसका पालन करनेमें प्रसन्नताकी भी कोई सीमा नहीं।
श्रीहारिद्रुमत गौतम नामके एक ऋषि थे। उनके	तात्पर्य यह कि विपरीत-से-विपरीत आज्ञाके पालनके
पास जबालाका पुत्र सत्यकाम गया और बोला—'मुझे	समय प्रसन्नता, शान्ति आदि उत्तरोत्तर इतनी अधिक
ब्रह्मका उपदेश दीजिये।' गौतमने पूछा—'तुम्हारा गोत्र	बढ़ती जाती है कि हृदयमें हर्ष, प्रफुल्लता और शरीरमें
क्या है ?' उसने उत्तर दिया—' मैंने अपनी माँसे पूछा था	रोमांच, अश्रुपात आदिकी सीमा नहीं रहती, बल्कि वे
तो मॉॅंने कहा कि 'मैं तुम्हारे पिताकी सेवा किया करती	अनवरत बढ़ते ही जाते हैं। यह है परम श्रद्धा।
थी, गोत्रका मुझे ज्ञान नहीं है। तेरा नाम सत्यकाम है	उपर्युक्त भावसे भावित हो प्रभुके मनके, संकेतके
और मेरा नाम जबाला है।' यह सुनकर गौतम बड़े	या आज्ञाके अनुसार करनेवालेका शीघ्रातिशीघ्र कल्याण
प्रसन्न हुए और बोले—'तुम ब्राह्मण हो; क्योंकि तुम	हो जाता है, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं।
सत्य बोल रहे हो। आजसे तुम्हारी माँके नामसे तुम्हारा	इसी प्रकार शास्त्रकी आज्ञाके पालनके विषयमें भी
गोत्र होगा।' तत्पश्चात् उसे शिष्य स्वीकार करके	ऐसा भाव हो तो उसे शास्त्रमें परम श्रद्धा समझना
गौतमने कहा—'तुम समिधा ले आओ, मैं तुम्हारा	चाहिये।
उपनयन कर दूँगा।' फिर उन्होंने चार सौ गायें अलग	ईश्वरके मिलनेकी तीव्र इच्छा
करके कहा—'तुम इनके पीछे-पीछे जाओ।' तब उन्हें	एक भाई दुर्गुण और दुराचारसे युक्त है, किंतु
ले जाते समय सत्यकाम बोला—'इनकी एक हजार गायें	ईश्वरके मिलनेकी महिमाको सुनकर उसके मनमें ईश्वरसे
हुए बिना मैं नहीं लौटूँगा।' इस प्रकार कहकर वह वनमें	मिलनेकी तीव्र इच्छा जाग उठी; ऐसी परिस्थितिमें भगवान्
चला गया और वहीं वर्षोंतक रहा। जब वे एक हजारकी	उसके दुर्गुण और दुराचारोंकी ओर ध्यान न देकर उसे
संख्यामें हो गयीं तो एक बैलने कहा—'अब हमारी	अविलम्ब दर्शन दे सकते हैं। कोई दो-तीन सालका छोटा
संख्या एक हजार पूरी हो गयी, तुम हमें गुरुके पास ले	बालक मल-मूत्रसे भरा है और माताके लिये अत्यन्त
चलो।' वह गायोंको लेकर गुरुके समीप पहुँचनेके लिये	व्याकुल है। स्नेहमयी माता अपने उस हृदयके टुकड़ेको
चला। वहीं रास्तेमें उसको साँड़के द्वारा ब्रह्मके प्रथम	जलसे शुद्ध करके हृदयसे लगाना चाहती है, किंतु बालक
पादका, अग्निके द्वारा द्वितीय पादका, हंसके द्वारा तृतीय	इतना आतुर है कि विलम्ब सहन नहीं कर सकता। उसे
पादका और मद्गु (जलकुक्कुट)-के द्वारा चतुर्थ पादका	इस बातका ज्ञान ही नहीं है कि मल-मूत्रसे लथपथ होनेके
उपदेश प्राप्त हो गया। इस प्रकार अनायास ब्रह्मका	कारण मुझको माँ हृदयसे लगानेमें विलम्ब कर रही है,
उपदेश प्राप्तकर वह ब्रह्मज्ञानी हो गया। जब वह	वह तो मातासे मिलनेके लिये अतिशय करुणाभावसे

िभाग ९२ समझना चाहिये कि हमारे कर्मोंमें भगवानुका हाथ नहीं व्याकुल हो फूट-फूटकर रोता है। ऐसी परिस्थितिमें माता है, कामका हाथ है; किंतु जहाँ भगवान्का हाथ है, वहाँ उसकी अतिशय व्याकुलताको देखकर स्नेहके कारण उसे कर्तव्यकर्मकी अवहेलना नहीं हो सकती और कामनाका हृदयसे लगा लेती है। पर भगवान्का स्नेह तो अनन्त माताओंसे बढ़कर है, फिर वे विलम्ब कैसे कर सकते अभाव होनेके कारण सकाम कर्म भी नहीं होते; तो फिर हैं ? स्नेहके कारण जब भक्तके हृदयमें प्रभुसे मिलनेकी पापकर्म तो हो ही कैसे सकते हैं। यदि हों तो समझना लालसा अत्यन्त बढ़ जाती है, तब भगवान् उसके दुर्गुण-चाहिये कि वहाँ कामका हाथ है। दुराचाररूप दोषोंकी ओर देखकर भी विलम्ब नहीं करते। गीतामें अर्जुनने पूछा कि-माता तो बच्चेके मल-मूत्रकी सफाई करनेमें अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः। विलम्ब भी कर सकती है; किंतु भगवान्की दृष्टिमें तो अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ उस साधकके दुर्गुण-दुराचार रह ही नहीं जाते, तब वे (३।३६) कैसे विलम्ब कर सकते हैं? पर साधकके हृदयमें 'हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित मिलनकी इच्छा अत्यन्त तीव्र होनी चाहिये, फिर वह कैसा भी दुराचारी क्यों न हो? भगवान् तो केवल एक होकर पापका आचरण करता है?' तीव्र प्रेम और मिलनकी तीव्र लालसाको ही देखते हैं इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा— और कुछ नहीं। काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। अतएव हमलोगोंके हृदयमें भगवान्से मिलनेकी महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ उत्कट इच्छा और परम प्रेम हो, इसके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। 'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, भगवान्पर निर्भरता यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला बिल्लीका बच्चा जैसे अपनी माँपर निर्भर करता है, और बड़ा पापी है, इसको ही तुम इस विषयमें वैरी हमें उससे भी बढ़कर भगवान्पर निर्भर होना चाहिये। जानो।' दो सालका छोटा बालक थोडी देरके लिये भी माँको 'भगवान्की निर्भरता'का यह अर्थ नहीं कि वह छोड़ना नहीं चाहता, वह माँके ही भरोसे रहता है। माँ बालककी भाँति सर्वथा कर्मोंका त्याग कर देता है। चाहे मारे, चाहे पाले। वह माँके सिवा दूसरेको नहीं बालकको ज्ञान नहीं है, इसलिये उसके लिये कर्तव्य लागू नहीं पड़ता; किंतु जिसको ज्ञान है, वह सर्वथा कर्म जानता। वह तो एक माँपर ही पूर्णतया निर्भर है। इसी प्रकार कल्याणकामीको अपने कल्याणके लिये भगवान्पर छोड़कर बैठे तो वह भगवान्की निर्भरता नहीं, वरं प्रमाद निर्भर होना चाहिये। भगवान् तारें, चाहे मारें। उसमें कुछ है। जो भगवान्पर निर्भर हो जाता है, वह चिन्ता, शोक, भी विचार न करे, केवल भगवान्के ही भरोसे रहे। भय, ईर्ष्या, उद्वेग आदि दुर्गुणोंसे रहित हो जाता है। भगवान्के विधानके अनुसार सुख-दु:ख आदि जो कुछ उसमें धीरता, वीरता, गम्भीरता, निर्भयता, शान्ति, सन्तोष, प्राप्त होते हैं, उनको भगवानुका भेजा हुआ पुरस्कार सरलता आदि गुण स्वयमेव आ जाते हैं। मानकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये और अपनेद्वारा अतएव परमात्माकी प्राप्तिके लिये परमात्माके होनेवाले कार्योंमें ऐसा समझना चाहिये कि हमारे सारे शरण होकर नित्य-निरन्तर भगवान्के नाम और रूपका कर्म भगवान् जैसे करवाते हैं, वैसे ही होते हैं; किंतु इस स्मरण करते हुए उसपर सर्वथा निर्भर रहना चाहिये। विषयमें अकर्मण्यता (कर्म करनेमें जी चुराना) और भगवान् जो कुछ करें, उसको उनकी लीला समझकर स्क्रामुक्तान्तर्वार्म् अङ्गित्रहर्ने सिहिङ्गेलेड्हें तो व्यविक्षान्त्र । रहे अभै हड्से से Avinash/Sha संख्या २ ] उनकी क्रीडा उनकी क्रीड़ा ( गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज ) यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः। स्वाभाविक हैं; किन्तु विवेचना करनेवाले उसीपर तर्क तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र संसारचक्रगतये परमेश्वराय॥\* करते हैं। पहले दुपट्टा बायें हाथसे ही क्यों उठाया? टोपी तिनक टेढ़ी क्यों लगायी? लगाकर चार कदम बायीं ओर यह जगत् प्रभुकी क्रीडास्थली है। इसमें वे नाना रूपोंसे नाना भाँतिकी क्रीडाएँ करते हैं। सृष्टिके आदिमें क्यों चला? बस, ये ही प्रश्न इतने जटिल बन जाते हैं जब कुछ नहीं था, तब उन्होंने अपनी कमलके समान कि लोग इन्हींपर मस्तिष्क खपाते रहते हैं। अरे! यह तो बड़ी-बड़ी आँखोंको फाड़कर चारों ओर देखा। स्वभाव है, क्रीड़ा करनेवालेकी इच्छा है। सर्वत्र शान्ति थी, सर्वत्र शून्यका साम्राज्य था, वे इस जगत्को हम भगवान्की क्रीडाभूमि और समस्त सोते-सोते ऊब गये थे। योगनिद्रासे भी उन्हें थकान-सी प्रपंचको उनके खेलका साज-समान मान लें तो न फिर मालुम पडने लगी। अब उन्हें खेलकी इच्छा हुई। कोई झंझट है, न वाद-विवाद है। भगवान् अनेक तरहसे स्वतस्तृप्त आत्मारमणको भी इच्छा! यह कैसी विपरीत खेल रहे हैं। उनकी क्रीड़ामें न कोई सम्भव, न असम्भव। आज लोग गर्व करते हैं - हमने इंजन बनाया, तार बनाये, बात है ? यहीं तो बात है। वे ही अनुकूल, प्रतिकूल सबके जनक हैं। उनके लिये न कोई कर्तव्य न अकर्तव्य। उनके हम यह कर देते हैं, वह कर देते हैं। मैं कहता हूँ-तुम लिये सभी अनुकूल हैं, सभी प्रतिकूल। पृथ्वीका एक कण बना सकते हो? जलकी एक बुँद बना देखते-ही-देखते खेलका साज-सामान बनने लगा; सकते हो? विद्युत्की एक किरण तैयार कर सकते हो? क्योंकि क्रीड़ा एकत्वमें नहीं होती। खेलनेके लिये अनेक वायुका एक श्वास उत्पन्न कर सकते हो? नहीं, तो सब चाहिये। वह एक-से अनेक हो गया। उसने अपने बहुत-व्यर्थ है। मायामें क्या सम्भव, क्या असम्भव? सभी सम्भव है. सभी असम्भव है। से रूप बना लिये, वही क्रीडाका साज-सामान बन गया। उसीने खेलनेवालोंके अनेक रूप धारण कर लिये। बस, वे हरि खेल रहे हैं। आदिशक्ति महामायाके साथ वे स्वयं नाचते हैं। महामाया ताली बजाकर उन्हें नचा रही है।

\* जो अपनी अचिन्त्यगति मायासे इस संसारको रचकर उसमें अनुप्रविष्ट हो जाते हैं तथा कर्म और कर्मफलका विभाग करते हैं। जिनकी

अगम्य लीलाएँ, जिनके चित्र-विचित्र खेल, इस संसाररूपी चक्रकी गतिका प्रधान हेतु हैं, उन परमेश्वरको नमस्कार है।

खेल शुरू हो गया। दार्शनिकोंने उसमें अनेक तर्क लगाये। वैज्ञानिकोंने उसमें सूक्ष्मताका अन्वेषण किया। विद्वानोंने उसकी क्रीडाके ऊपर अनेकों शास्त्र बनाये। वह हँसता रहा, मुसकराता रहा,

कुछ बोला नहीं। उसने इच्छा की, आकाश बन गया। उसमें वायु चलने लगी, प्रकाश हो गया। गरमी लगने लगी,

जल बन गया। गीला हो गया, पृथ्वी बन गयी-यही तो

क्रीडाक्षेत्रोंमें होता है। अजी! पहले प्रकाश क्यों आया?

चाँदनी ही पहले क्यों तानी गयी? छिड़काव बादमें क्यों

हुआ ? इसीपर लोग माथापच्ची करते हैं, करें। खिलाड़ीको ये प्रश्न व्यर्थ-से लगते हैं, उसे इनसे कोई प्रयोजन नहीं। खेलनेवालेने रखी हुई गेंद स्वाभाविक उठा ली है। अपना दुपट्टा उठाकर ओढ़ लिया, टोपी लगा ली, जूती

पहन ली, खेलनेको चल दिया। उसके सब काम

नाचे नँदलाल नचावे वाकी मैया। वे स्वयं नाचते हैं और चराचर प्रकृतिके साथ क्रीड़ा करते हैं। कभी स्वयं बैठ जाते हैं—सबको नचाते हैं। उमा दारु जोषित की नाईं। सबिह नचावत रामु गोसाईं॥ नाचना-नचाना, गाना-गवाना—इसीका नाम रास है। यह रास अनादिकालसे हो रहा है, अनन्तकालतक होता

रहेगा। इसका न आदि है, न अन्त, न मध्य, न अवसान। चल रहा है, चलता रहा है, चलता रहेगा। हम सब उसीकी प्रेरणासे कर्म कर रहें हैं, क्रीड़ा कर रहे हैं। क्रीड़ा सुखके लिये होती है-आनन्दके लिये होती है। हम रोज प्रत्यक्ष देखते हैं—खेलमें हमें सभी चीजें प्रसन्न करनेके लिये ही होती हैं। विदूषक आकर हँसीकी बातें करता है, हमें प्रसन्नता होती है, हँसते हैं। फिर एक नायिका आकर रोती

भाग ९२ \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* \* है, तड़फड़ाती है, मूर्तिमयी करुणाका रूप दिखाकर हँसते पेटमें बल पड़ जाय, आँखोंमें आँसू आ जाय। खुलकर हँसो, लज्जा-संकोच छोड़कर हँसो, हँसनेमें भय मत करो। दर्शकोंको रुला देती है। सबकी आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं। फिर भी हम आनन्दसे उछल पड़ते हैं, वाह-वाह! बड़ा अरे! हँसना, खेलना यही तो क्रीडामें आनन्द है, यही तो सुन्दर अभिनय किया। कमाल कर दिया। आज तो बड़ा मजा है। हँसे बिना खेल कैसा? भगवान् हँसकर ही तो आनन्द आया। कभी किसीका सिर कटता है, हम ताली जीवोंको फँसा लेते हैं! 'हासो जनोन्मादकरी च माया' यही बजा देते हैं। किसीपर विपत्ति आती है, हम उत्सुक होकर तो उनका जादू है। अत: जगत्में आकर जो रोया, वह हतभागी है, कर्महीन है। अरे! रोना क्यों? रोवे वह, जिसकी उसका परिणाम देखने लगते हैं। सारांश यही है कि नाटकमें जो भी हो—सभीमें हमें सुख हैं, सभीमें आनन्द है। दु:ख नानी मर जाय। हमें तो हँसना है, हमारी नानी—महामाया-तभी होता है, जब पात्र अपना अभिनय तत्परतासे नहीं आद्याशक्ति तो कभी मरती नहीं, वह तो अमर है। हमारे परम करते। इसी तरह यह जगत् तो आनन्दकी जगह है। पिता भी उसके साथ खेलते हैं, फिर हमें रोनेसे क्या काम? खेलनेका स्थान है, रंगस्थली है, क्रीडा़का क्षेत्र है। इसमें जो अच्छा, यदि रोना ही है तो हँसते-हँसते रोओ, दुखी होते हैं, चिन्तित होते हैं, व्यग्र बने रहते हैं, उन्होंने कबीरकी तरह रोओ! कबीरने गाया है 'कबीर हँसना दूर अपनेको ही कर्ता मान रखा है, वे स्वयं इस नाटकके दर्शक कर रोनेसे कर प्रीत 'उनका रोना नानी मरनेका रोना नहीं न बनकर अपनेको सूत्रधार समझे बैठे हैं। अरे! सूत्रधार तो है। नाटकमें करुणाका रोना है, वह तो हँसीके लिये ही वे ही हिर हैं। वे जो भी कुछ करते हैं, जिससे जो भी कुछ है, सुखके लिये ही है। अत: मनमें कभी म्लानता न करा रहे हैं, सब वे ही करा रहे हैं। तुम उनकी क्रीड़ामेंसे लाओ, इस क्रीड़ाको देखकर हँसो और ऐसे हँसो कि अपनापन हटा लो, अपनेको सूत्रधारके सिंहासनसे हटाकर हँसते-हँसते ही विदा हों। दर्शकोंकी श्रेणीमें कर लो। तब तुम्हें नाटकका असली सुख आप कहेंगे-जो क्रीड़ा कर रहे हैं, वे सभीको मिलेगा। सूत्रधार तो नाटकका निर्माता है। उसके लिये न दिखायी तो देते नहीं। यह कैसी क्रीडा है? वाहजी, वाह! कोई हर्षकी बात है, न विस्मयकी। उसीने तो नाटकका यह भी खूब प्रश्न किया। नाटककार तो छिपा ही रहता निर्माण किया है। वह उसका आदि, मध्य, अन्त—सब है, सूत्रधार रंगमंचपर कभी ही आता है। वह तो छिपकर जानता है। तुम उसकी बराबरी मत करो, नहीं तो दुखी होगे। समस्त नाटकका संचालन कर रहा है। यह कबड्डीका खेल तुम तुम्हीं हो, वह वही है। तुम खेल देखो, आनन्द करो, नहीं है, आँख-मिचौनीका खेल है। कृष्ण ग्वालबालोंके साथ खेल कर रहे हैं, 'दाम! तू भी आ, सुदाम! तू भी सुखी रहो या उसकी इच्छासे तुम भी खेल करने लगो। बस, आनन्द-ही-आनन्द है, सुख-ही-सुख है। खेलको खेल ही आ जा' सभी मिल जाते हैं। 'सब आँखें बन्द कर लो, समझो, जहाँ इसमें सत्यकी भावना हुई कि तुम दुखी और में वृन्दावनकी कुंजोंमें छिपा जाता हूँ। तुम सब मुझको अशान्त हुए। सूत्रधार ही सत्य है, बाकी तो सब उसीका ढूँढ़ना।' यह कहकर वृन्दावनचन्द्र वहीं पासकी निकुंजमें निर्माण किया हुआ खेल है। उसमें न सत्यता है, न छिप गया। कोस-दो कोस—सौ-दो सौ गज वे नहीं गये। असत्यता। सत्यता तो है ही नहीं; क्योंकि वह बनता-पासमें, बिलकुल पासमें - जहाँसे सबका ढूँढ़ना देख सकें, बिगड़ता रहता है। असत्यता भी कहें तो कैसे कहें; क्योंकि वे छिप गये। अब सखा उन्हें ढूँढ़ रहे हैं—कोई गहवरवन सत्यस्वरूपकी बनायी सभी चीजें सत्य हैं, सत्यसे जाता है तो कोई भाण्डीरवन, कोई बेलवन तो कोई असत्यका निर्माण हो नहीं सकता। अतः तुम इसकी तमालवन। सब भटक रहे हैं, सब दौड़ रहे हैं। सूर्य-सत्यता-असत्यताके झमेलेमें पड़ो ही नहीं। इसे तो चन्द्रकी तरह चक्कर लगा रहे हैं। किसलिये—अपने सूत्रधारपर छोड़ दो। तुम तो खेलको खेल समझो और सदा प्यारेको खोजनेके लिये। क्यों खोज रहे हैं? क्या प्रयोजन ठहाका मारकर हँसते रहो। खुब हँसो, हँसते-हँसते लोट-है ? अरे! प्रयोजन क्या ? खेल है, आँख-मिचौनीकी लीला पोट हो जाय। जोरसे हँसो, कहकहा मारकर हँसो, हँसते-है, वह तो छिपकर ही बन सकते हैं। स्वयं छिप गये हैं,

संख्या २ ] उनकी	क्रीड़ा १३
**********************	************************
सखा उन्हें ढूँढ़ रहे हैं। कोई पूर्व जाता है, कोई पश्चिमकी	दीजिये—रोते-रोते घरभरको उठा लेगा, घरभरमें आफत
परिक्रमा करता है, कोई उत्तरके तीर्थोंमें भटकता है, कोई	मचा देगा। उसके लिये वह क्लेश उतना ही बड़ा है, जितना
दक्षिणके वन-उपवनोंमें खोज कर रहा है। श्यामसुन्दर	एक सम्राट्को राज्य नष्ट होनेपर होता है। बात दोनों एक ही
समीप ही छिपे-छिपे हँस रहे हैं। किसी चतुर सखाकी	हैं। साम्राज्य भी खिलौना है, मिट्टीका खिलौना भी खिलौना
दृष्टि पड़ गयी, उसने जाकर पल्ला पकड़ लिया, क्यों जी,	है। बच्चेको एक छोटा-सा सुन्दर खिलौना लाकर दे दीजिये।
यहाँ छिपे बैठे हो ? तब वह मुँहपर उँगली रखकर कहता	इतना खुश होगा, जितना एक गरीब भूमण्डलका राज्य
है—' अरे! चुप, बस, तू भी मेरे पास आ जा।' उसके लिये	पानेपर खुश हो सकता है। दोनों ही बच्चे हैं, दोनों ही नादान
खेल खतम हो जाता है। उस सखाका दौड़ना-धूपना,	हैं, दोनों ही खिलौनोंसे सुखी होनेवाले हैं, दोनों ही खिलौने
घूमना, खोजना, चक्कर लगाना बन्द हो जाता है। वह भी	मायिक तथा नाशवान् हैं। हम बच्चोंके खेलको देखकर
हँसता-हँसता दूसरोंको देखता है।	उसकी हँसी उड़ाते हैं, उसकी अवहेलना करते हैं; किन्तु
एक छोटा सखा है, नन्हा-सा बच्चा है, बहुत दौड़	स्वयं नहीं समझते कि हम भी उसी तरहके बच्चे हैं। हम भी
नहीं सकता। प्रत्येक निकुंजोंमें जा नहीं सकता; क्योंकि	तो खेल ही कर रहे हैं।
वृन्दावनकी कुंजें कँटीली हैं और जमीन ककरीली है।	यह जगत् त्रिगुणात्मक है। इसकी तीन धाराएँ सनातन
छोटा सखा एकदम शिशु है। वह रो पड़ता है, श्यामसुन्दर!	हैं, तीनों ही उन्हींकी हैं। तीनोंमें वे ही खेल रहे हैं। जो
अब मैं तुम्हें स्वयं न खोज सकूँगा। तुम ही मेरे पास आ	सात्त्विक प्रकृतिके लोग हैं, वे भजनमें, ध्यानमें, सत्संगमें,
जाओ। तब वह हँसता हुआ, मुसकराता हुआ, दौड़कर	एकान्तवासमें रहकर खेलते हैं। उन्हें संसारी पदार्थींकी अपेक्षा
आकर अपनी नन्ही-नन्ही कोमल उँगलियोंसे उसकी	नहीं। शरीर-निर्वाहको कुछ चाहिये। उनकी लड़ाई किसी
आँखें बन्द कर लेता है। 'अरे! घबड़ाता क्यों है? रोता	लौकिक पदार्थके लिये नहीं है। वे आत्मसुखमें रमण करनेके
क्यों है, मेरे यार! मैं कहीं दूर थोड़ा ही गया हूँ।'	लिये आत्माका आलोचन-प्रत्यालोचन करते हैं। जो राजस
'मुझको क्या ढूँढ़े बंदे! मैं तो तेरे पासमें' तब दोनों	प्रकृतिके हैं, उन्हें सांसारिक ऐश्वर्य चाहिये। उसका राज्य
खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं, खेल खतम हो जाता है।	हमें मिले, वह शासन ठीक नहीं करता, इसका प्रबन्ध जन-
इसी तरह जगत्में यह आँखिमचौनीका खेल हो रहा	मतके अनुकूल हो, वह शासक कमजोर है, उसे हटाकर
है। खेलको खेल समझनेमें ही सुख है, कल्याण है। यदि	दूसरा शासक बनाओ—इस प्रकार उनका सुख धन, ऐश्वर्य
अपने पुरुषार्थसे तुम कन्हैयाको ढूँढ़ सको तो भी खेल	और विभूतिके उपभोगमें है। जो तामस प्रकृतिके हैं, उनको
खतम हो जायगा। स्वयं पता न लगा सको तो जिसने पता	विषयोंमें ही सुख है। यही उनका ध्येय है। वहाँसे लूट,
लगा लिया है, उसीके बताये मार्गपर चले जाओ या आर्त	यहाँसे चोरी कर, उसे मार, यह भोग कर, वह ला—बस,
होकर उसे पुकारो, वह स्वयं दौड़ा आयेगा। उसका भी	इसीमें दस्युधर्मका पालन करते हुए संसारी भोग पदार्थींमें ही
छिपनेमें कोई अन्य प्रयोजन नहीं, वह भी क्रीड़ा ही कर	लिप्त रहना। उनका सुख भौतिक सुख है। इसी तरह यह
रहा है, विनोदके लिये ही छिपा है, उसे इसीमें आनन्द है।	जगत् त्रिगुणात्मक है, तीनों गुणोंके संयोगसे यह चल रहा है।
जिस प्रकार हमारे प्रभुको खेल प्रिय है, उसी तरह हम	सभा-सम्मेलनोंमें यही सब होता है। तामस प्रकृतिके लोग
सब भी खेलको पसन्द करते हैं। पिताके गुण पुत्रमें आने ही	इकट्ठे होकर मांस, मद्य, व्यभिचार, चोरी, जुआके षड्यन्त्र
चाहिये। आज सभी लोग खेल ही तो कर रहे हैं। कोई घर	रचते हैं। सब परस्परमें इकट्ठे होकर इन्हींके लिये वाद-
बना रहा है। कोई युद्ध कर रहा है। कोई पढ़ने जा रहा है।	विवाद तथा कलह करते हैं। उनके सम्मिलनका सार यही
कोई व्यापार कर रहा है। कोई एक-दूसरेको प्यार कर रहा	है। राजस प्रकृतिके लोग मिलकर राजनैतिक मन्त्रणाएँ,
है, एक-दूसरेके लिये तड़प रहा है। बच्चोंके खेलमें भी तो	राजस मनोरंजन तथा राजनैतिक व्याख्यान करते हैं।
यही सब होता है। बच्चेका एक मिट्टीका खिलौना फोड़	सात्त्विक प्रकृतिके लोग भजन, कीर्तन, सत्संग,

[भाग ९२ कथावार्ता, यज्ञ-याग आदिके महोत्सव करके उन्हींमें सुखकी यही है कि हम इन लौकिक पदार्थोंसे ऊपर उठकर प्रभुकी ओर बढ़ सकें। यदि इन महोत्सवोंमें हमें निरन्तर भगवत्-खोज करते हैं। कुछ लोग दम्भके लिये, कुछ मान-प्रतिष्ठाके लिये, स्मृति होती रहती है, प्रत्येक काममें भगवान्का वरद हस्त कुछ लोग द्वेषसे, ईर्घ्यासे भी करते हैं। यह भावोंका संकर है। दिखायी देता है, तब तो इन सबका करना सार्थक है। नहीं तो कहीं कोई गुण बढ़ता है, कहीं कोई घटता है। जैसे और कार्य, वैसे ही ये कार्य। सबका मूल भगवत्-स्मृति हम कुछ भी खेल करें, यदि हमारा लक्ष्य परमार्थ है, है, समस्त क्रीड़ाके आदि, मध्य और अन्तमें हमें प्रभु-ही-यदि श्रीहरि हमारे खेलके ध्येय हैं तो वह खेल यथार्थ खेल प्रभु दिखायी दें तो हमें शोक, मोह—कुछ भी बाधा न दे है। यदि प्रभुका स्थान इन मायिक पदार्थींने ले लिया है तो सकेंगे। यदि हम भगवानुको भूलकर विषयोंमें आसक्त हो हम खेल-ही-खेलमें भटक गये हैं। गये तब तो उनकी मायामें भूल गये। भगवानुका नाम-कीर्तन, गुणकीर्तन, लीलाकीर्तन-यह जो कुछ दिखायी दे रहा है, यह त्रिगुणात्मक जगत् यही सच्चा खेल है। इससे छिपे हुए भगवान् प्रकट हो जाते सब उनकी लीला है, सब उनका खेल है, हम सब उनकी हैं और यह संसार हमें विस्मृत-सा हो जाता है। जबतक प्रेरणासे, उनके आदेशसे उन्हें खोज रहे हैं। जगतुके माने ही जगत् सत्य प्रतीत होता है तबतक भगवान् नहीं दिखायी देते। हैं, जो चलता-फिरता रहे। यह चलन किसलिये है ? अपने जब भगवान् दीख जाते हैं तो यह जगत् अपने-आप अदृश्य प्रियतमकी खोजके लिये, अपने जीवन-सर्वस्वसे मिलनेके हो जाता है। इन मायिक पदार्थींके बिना-किसी प्रकारके लिये; जगत्के यावत् पदार्थ हैं, सब चल रहे हैं अनन्तकी नशा, अमल या मादक द्रव्यके बिना जहाँ भगवन्नाम-गुण-ओर। किसी-न-किसी दिन भूलते-भटकते सब उसीके लीला-कीर्तन सुनते-सुनते हमें आत्मविस्मृति हो जाय, वही समीप पहुँचेंगे। सबका प्रयत्न उसीके लिये है। जानमें, प्रभुका सच्चा खेल है। जो जीव कुछ कालको भी उसमें अनजानमें—सब उसी महासागरसे मिलने दौड़ रहे हैं। इस क्रीड़ाको क्रीड़ा समझना ही उनकी ओर तेजीसे सम्मिलित हो जाता है, वह उतने समयके लिये सांसारिक त्रिविध तापोंसे मुक्त हो जाता है। उसे एक अलौकिक बढ़ना है। इसमें सत्यका समावेश करना ही उनसे दूर आनन्दका अनुभव होने लगता है। भटकना है। इसलिये मेरे प्यारे बन्धुओ! आओ और उस अनादि-अनन्तकी खोज करो। हँसते-हँसते किलकारियाँ जहाँ मनुष्योंके अहंकृति न हो या कम-से-कम हो, वहाँ प्रभुकी प्रत्यक्ष लीला दिखायी देती है। उस कार्यमें जो मारते हुए उन्हें खोजो। न खोज सको तो उनके लिये रोओ, भी जाता है, वह अपनेको एक अलौकिक छायामें स्थित आर्त होकर पुकारो। वे श्यामसुन्दर तुम्हें अपनी छातीसे अनुभव करता है। काम सभी एक-से हैं, सभीमें प्रपंचकी चिपटा लेंगे और फिर तुम प्रत्यक्षमें उनका दर्शन-स्पर्श प्राप्त छाया है, सभीमें वे ही पंचभूतोंके पदार्थ हैं। वे ही पृथ्वी, कर सकोगे। श्रीकृष्ण ही नटनागर नट हैं। जगत् ही उनकी जल, तेज, वायु और आकाशके बने खिलौने हैं; किंतु उनमें क्रीडास्थली रंगमंच है। चराचर जगत्के जीव ही उनके क्रीड़ापात्र हैं। जगत्के यावन्मात्र व्यापार ही उनके क्रीड़ा-भाव ही प्रधान है। जहाँ जितनी ही कम अहंकृति होगी, वहाँ उतना ही अधिक रस होगा। सुदामाके तन्दुलोंमें क्या था, प्रसंग हैं। वे उसमें अन्तर्यामीरूपसे, गुरुरूप, आचार्यरूपसे, प्रतिभारूपसे कभी-कभी प्रत्यक्षरूपसे भी प्रकट होकर खेलते अपनेपनका अभाव। मेरा यह उपहार कुछ नहीं है। प्रभुने कहा—'नहीं सब कुछ है।' दुर्योधनके यहाँ किस चीजकी हैं फिर छिप जाते हैं। उनकी क्रीडाकी ओर दुष्टि देनेमें ही कमी थी, कितने पदार्थ थे; किन्तु उसमें अहंकृति थी। इतने कल्याण है, नहीं तो अकल्याण-ही-अकल्याण है। इसीलिये भगवान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है— आडम्बरसे सजाये हुए भी प्रभुने ठुकरा दिये। सबके घट-घटकी वे प्रभु जानते हैं। तस्माद् देहिममं लब्ध्वा ज्ञानिवज्ञानसम्भवम्। Hindussan Discord Server मार्चित अधिर पुष्टी विकास प्राप्त के De पिर्श्व HTL OVE कि विकास के Millish Sha

भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय संख्या २ ] भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) भगवत्स्वरूप भक्तशिरोमणि भरतजी भगवान् राघवेन्द्र मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥ श्रीरामचन्द्रजीसे सन्त-असन्तके लक्षण पूछना चाहते हैं, करिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हिर कथा न भावा॥ परंतु संकोचवश निवेदन करनेमें हिचकते हैं। भरतजी अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥ आदि भ्रातागण सब श्रीहनुमान्जीकी ओर देखते हैं-बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥ इसलिये कि श्रीहनुमान्जी भगवान्के अतिशय प्रिय भक्त (रा०च०मा० ७।३९।१—८, ७।३९, ७।४०।१—८) हैं, वे हमारी ओरसे निवेदन कर दें। अन्तर्यामी प्रभु सब यदि सच्चाईके साथ विचार करके देखा जाय तो जानते ही थे, वे कहते हैं—'हनुमान्! कहो, क्या पूछना न्यूनाधिकरूपमें ये सभी लक्षण आज हमारे मानव-चाहते हो ?' हनुमानुजी हाथ जोड़कर कहते हैं—'नाथ! समाजमें आ गये हैं। सारी दुनियाकी यह स्थिति है। भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, परंतु शीलवश प्रश्न करते सभी ओर मनुष्य आज काम-लोभपरायण होकर सकुचाते हैं। 'प्रेमसिन्धु भगवान् कहते हैं— 'हनुमान्! तुम असुरभावापन्न होता जा रहा है। अपने देशकी स्थिति तो मेरा स्वभाव जानते हो, भरतजीमें और मुझमें क्या कोई देखकर तो और भी चिन्ता तथा वेदना होती है। जिस देशमें त्यागको ही जीवनका लक्ष्य माना गया था, अन्तर है?' भरतजीने भगवान्के वचन सुनकर उनके चरण पकड़ लिये और अपने अनुरूप ही निवेदन किया— जहाँपर स्त्रीमात्रको स्वाभाविक ही माता माना जाता था, नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह। जहाँ परधनकी ओर मानसिक दृष्टि डालना भी भयानक पाप माना जाता था—उसको भारी जहर 'विष तें विष केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह॥ *भारी* ' माना जाता था, वहाँ आज कलाके नामपर (रा०च०मा० ७। ३६) फिर उन्होंने सन्त-असन्तके भेद और लक्षण पूछे। परस्त्रियोंके साथ पर-पुरुषोंका अनैतिक सम्बन्ध बड़ी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने पहले सन्तोंके अति सुन्दर लक्षण बुरी तरहसे बढ़ा जा रहा है और पर-धनकी तो कोई बात ही न रही। दूसरेके स्वत्वका येन-केन-प्रकारेण बतलाकर फिर असन्तोंका स्वभाव बतलाते हुए कहा— अपहरण करना ही बुद्धिमानी और चातुरी समझी जाती सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥ है। कुछ ही समय पूर्व ऐसा था कि मुँहसे जो कुछ कह तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥ दिया जाता था, उसको प्राणपणसे निबाहा जाता था। खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरिहं सदा पर संपति देखी॥ आज कानूनी दस्तावेज भी बदले जानेकी नीयतसे बनाये जहँ कहुँ निंदा सुनिहं पराई। हरषिहं मनहुँ परी निधि पाई॥ जाते हैं। मिथ्याभाषण तो स्वभाव बन गया है। बडे-काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥ से-बडे पुरुष स्वार्थके लिये झुठ बोलते हैं। बडे-बडे बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥ राष्ट्रोंके प्रसिद्ध अधिनायक, जनताके नेता, दलविशेषोंके लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥ बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥ संचालक, प्रख्यात संस्थाओंके पदाधिकारी, सरकारके ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारी, बड़े-से-बड़े अफसर (और) पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद। ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥ छोटे-से-छोटे कर्मचारी, बड़े-बड़े व्यापारी (और) छोटे

ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥ छोटे-से-छोटे कर्मचारी, बड़े-बड़े व्यापारी (और) छोटे लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥ व्यापारी (भी), दलाल, कमीशन-एजेन्ट, रेल और काहू की जौं सुनिहं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥ पोस्टिक छोटे-बड़े कर्मचारी—सभी बेईमानीमें आज जब काहू कै देखिंह बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥ एक-से हो रहे हैं, मानो होड़ लगाकर एक-दूसरेसे आगे

जब काहू के देखाह बिपता। सुखा भए मानहु जग नृपता॥ एक-स हा रह हं, माना हाड़ लगाकर एक-दूसरस आग स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥ बढ़नेकी जी-तोड़ कोशिशमें लगे हुए हैं। चोर-बाजारी,

भाग ९२ घूसखोरी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता लोगोंके स्वभावगत हो विश्वास था। दूसरेकी किसी भी वस्तुपर मन चल जाना भी पाप है और उसे छल-बल-कौशलसे ले लेना तो गयी है। सभी मानो बेईमानीका बाजार सजाये, एक-महान् अपराध है—यह मान्यता थी। सुख-दु:ख हमारे दुसरेको लूटने, ठगने और उसकी जड काटनेके लिये तैयार बैठे हैं। ऐसे बहुत थोड़े लोग होंगे, जिनकी कर्मके अनिवार्य फल हैं। बुरे कर्म करनेपर उसका ईमानदारीमें विश्वास किया जा सके। नये-नये कानून अच्छा फल हो ही नहीं सकता, फिर बुरा कर्म क्यों बनते हैं और बेईमानीके नये-नये रास्ते निकलते जाते हैं। करें—यह दुढ भावना थी और हमें शास्त्रानुसार अपना इसका कारण यही है कि जिनको कानून मानना है और कर्तव्य-पालन करते जाना है, कर्मका फल तो भगवान्के जिनके जिम्मे उसको मनवाना है, वे दोनों ही ईमानदार हाथ है, हमारा फलमें अधिकार नहीं, कर्ममें ही नहीं हैं। ऊपरसे एक-दूसरेको बेईमान बतलाते हुए भी अधिकार है—यह दृढ़ आस्था थी। इससे लोग स्वभावसे दोनों ही नये-नये तरीकोंसे बेईमानी बढानेमें लगे हैं। ही पापाचरणसे बचना चाहते थे और बचते थे। अफसर एवं राजकर्मचारी कहते हैं—'व्यापारी चोर हैं, आज ईश्वरका कोई भय नहीं। शास्त्रोंमें तथा कर्मींके फल और पुनर्जन्ममें विश्वास उठता जा रहा है, सभी इनको दण्ड मिलना चाहिये' और व्यापारी अफसरों, अधिकारियों और राजकर्मचारियोंकी खलेआम चोरी अधिकार चाहते हैं। कर्तव्यपर किसीका ध्यान नहीं है। और बेईमानी देखते हैं। चोरी और बेईमानी कैसे बन्द शक्तिमत्ता, अधिकार और धनका लोभ इतना बढ़ गया है हो ? यह अशोभनीय और अवाञ्छनीय परिस्थिति कैसे कि उसने मनुष्यको असुर ही नहीं, पिशाच बना दिया है। बदली जाय? अपने देश-राष्ट्रके लिये यह चिन्त्य है। इसीसे आजका मानव एक-दुसरेपर खुन चूसनेका दोष एक युग था, जिसमें लोगोंका यह विश्वास था कि लगाता है और स्वयं मानो छल-बल-कौशलसे दिन-रात सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी भगवान् सदा-सर्वदा सर्वत्र हैं खुन चुसनेका ही विशद व्यापार कर रहा है। उसने केवल और वे हमारी प्रत्येक क्रियाको देखते हैं। हम एकान्तमें इसी सिद्धान्तको मान लिया है कि किसी भी उपायसे हो, कोई पाप करते हैं, मनमें भी पापभावना करते हैं तो उसे धनकी-भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति होनी चाहिये; बस! यह भी भगवान् जानते-देखते हैं। इसलिये उनमें भगवान्से कामोपभोग ही सब कुछ है—'कामोपभोगपरमा संकोच था। भगवान्के भयसे लोग बुरा कर्म करनेमें एतावदिति निश्चिताः॥' (गीता १६।११) मनुष्यके लिये उत्तम लोकोंमें जानेके सात बडे डरते थे। इसके साथ ही चार बातें और हिन्दू-संस्कृतिमें सुन्दर उपाय सत्पुरुषोंने बतलाये हैं, जो ये हैं—(१) छोटे-बड़े सबके स्वभावगत-सी हो गयी थीं—(१) अपने धर्मपालनके लिये सुखपूर्वक नाना प्रकारके कष्टोंको स्वीकार करना, यह तप है। (२) देश, काल और मनुष्य-जीवनका चरम और परम उद्देश्य मोक्ष या भगवत्प्राप्ति है। इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये मानव-पात्रको देखकर सत्कारपूर्वक निष्कामभावसे अपनी वस्तु जीवनमें साधन करना है। (२) पुनर्जन्म अवश्य होगा दूसरेको देना, दान है। (३) विषाद, कठोरता, चंचलता, और उसमें हमें अपने अच्छे-बुरे कर्मोंका फल निश्चितरूपसे व्यर्थचिन्तन, राग-द्वेष और मोह, वैर आदि कुविचारोंको भोगना पडेगा। (३) शास्त्र सत्य हैं और उनके चित्तसे हटाकर उसे परमात्मामें लगाना, यह शम है। कथनानुसार सुख-दु:ख हमारे कर्मोंके फल हैं। (४) (४) विषयोंके समीप होनेपर भी इन्द्रियोंको उनकी ओर कर्तव्य-पालन करना ही हमारा धर्म है, केवल अधिकार जानेसे रोक रखना, दम है। (५) तन, मन, वचनसे बुरे पाना धर्म नहीं। इन चारों बातोंके कारण स्वभावसे ही कर्म करनेमें संकोच होना, लज्जा है। (६) मनमें छल, भोगोंके त्यागका महत्त्व था, उसीमें जीवनकी महत्ता कपट या दम्भका अभाव होना, यह सरलता है। (७) मानी जाती थी। चोरी-जारी आदि पापोंका फल विविध बिना किसी भेदभावसे प्राणिमात्रके दु:खको देखकर हृदयका द्रवित हो जाना और उनके दु:खोंको दूर करनेके योनियोंमें एवं नरकादिमें अवश्य भोगना पडेगा-यह

भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय संख्या २] आगमें ईंधन तथा घी डालते रहनेसे आग बुझती नहीं— लिये चेष्टा करना, यह दया है। प्रत्युत बढ़ती ही है, वैसे ही भोग-कामनाकी पूर्तिसे इन सातोंका पालन करनेवाला पुरुष कल्याण-भाजन होता है। किंतु यदि इनके कारण वह अभिमान कामना घटती नहीं, बल्कि बढती ही है। सौवाला करता है तो उसके ये तप आदि गुण मानरूपी तमसे हजारों-लाखोंकी चाह करता है तो लाखवाला करोडों-निष्फल होकर नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है— अरबोंकी चाह करता है। एक नियम यह भी है कि एक अभावकी पूर्ति अनेकों नये अभावोंकी सृष्टि करनेवाली यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति॥ होती है और जबतक अभावका अनुभव है, तबतक अहङ्काराङ्करस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति। प्रतिकूलता है, प्रतिकूलता रहते चित्त सर्वथा अशान्त (देवीभागवत ४।७।२५-२६) अत: अभिमान तो किसी प्रकार न आने दे, जो रहेगा, अशान्तचित्तमें सुख हो ही नहीं सकता। लोग मनुष्य श्रेष्ठ विद्या पढ़कर अपनेको ही पण्डित मानता भूलसे मानते हैं कि पैसेवाले बड़े सुखी हैं; क्योंकि यह है और अपनी विद्यासे दूसरेके यशको घटाता है, उसको बात यथार्थ नहीं है। उनके हृदयमें जैसी आग धधकती उत्तम लोककी प्राप्ति नहीं होती और उसकी पढ़ी हुई है, वैसी गरीबोंके हृदयमें शायद नहीं धधकती। इसका वह उत्तम ब्रह्मविद्या उसे ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं कराती। अनुमान भुक्तभोगी ही कर सकते हैं। अध्ययन, मौन, अग्निहोत्र और यज्ञ—ये चार कर्म उस दिन एक सज्जनने बहुत ठीक कहा था कि पहले यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी थे, जो भगवान् या मनुष्यको भवभयसे छुड़ानेवाले हैं, परंतु यदि यही अभिमानके साथ या मानकी प्राप्तिके लिये किये जायँ धर्मका भय नहीं मानते थे और पाप करते थे तथापि तो उलटे भय देनेवाले हो जाते हैं। \* इसलिये कहीं उनमें यह साहस न था कि वे अपनेको निर्दोष ही नहीं, जनताका और समाजका सेवक भी बतायें और उलटे सम्मान मिले तो फूल नहीं जाना चाहिये और अपमान हो तो संताप भी नहीं मानना चाहिये। पाप न करनेवालोंको डरायें-धमकायें तथा उन्हें पापी 'मैंने दान दिया है, मैंने इतने यज्ञ किये हैं, मैंने सिद्ध करें। आज तो हमारी यह दशा हो गयी है कि इतना पढा है, मैंने ऐसे-ऐसे व्रत किये हैं' इस प्रकार हम स्वयं धर्म-सेवा और देश-सेवातकके नामपर अनवरत जो अभिमानभरी डींगें मारता हुआ ये कर्म करता है, पाप करते हैं तथा अपने पापी गिरोहके बलपर निष्पाप उसको यही कर्म शुभफल न देकर उलटा भय देनेवाले लोगोंको डराते-धमकाते हैं एवं उन्हें पापी सिद्ध करना हो जाते हैं। इसलिये अभिमानका बिल्कुल त्याग चाहते हैं। जनसेवक बतलाकर डाकूका काम करना, करना चाहिये। ये हैं-महाभारतके निचोड़ आदर्श-भाई बनकर किसीका सतीत्वापहरण करना, धार्मिक उपदेश, जिन्हें मानकर चलनेसे ही हम वर्तमान समयमें बनकर लोगोंको ठगना, गुरु बनकर धन-धर्मको लूटना, अपना पथ सुधार सकते हैं। रक्षक नियुक्त होकर भक्षक बन जाना और पहरेदार यह कहा जा सकता है कि धनसे सुख मिलता है; बनकर चोरी करना आज बुद्धिमानी और गौरवका कार्य क्योंकि उससे प्राय: सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति होती बन गया है। सभी क्षेत्रोंमें लोग अपने-अपने चरित्रोंपर है। यह आंशिक सत्य भी है, परंतु यह सुख वस्तुत: ध्यान देकर देखें तो उन्हें उपर्युक्त कथनमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं मालूम होगी। यह हमारे नैतिक धनका नहीं है, हमारी आत्म-भावनाका है। धनमें तो पतनका एक बड़ा दु:खद स्वरूप है। सुख है ही नहीं। सुख है आत्माकी शान्तिमें। जो अशान्त है—दिन-रात उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कामनाकी चारों ओर दलबन्दी है। हम मानो अपनेको ही आगसे जलता है, उसको सुख कहाँ—'अशान्तस्य छलते हुए कहते हैं कि 'राष्ट्रियता बढ़ रही है, पर कुतः सुखम्।' (गीता २।६६) यह नियम है कि जैसे वस्तुत: प्रान्तीयता, वर्गवाद और व्यक्तिवाद ही बढ़ता जा \* चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि । मानाग्निहोत्रमृत मानमौनं मानेनाधीतमृत मानयज्ञ:॥ (महा०उद्योग० ३३।७३)

रहा है। दूसरोंको फासिस्ट बताना और स्वयं वैसा ही ऐसा बनकर जबतक किसी भी लोभ, भय या स्वार्थसे

भाग ९२

काम करना स्वभाव-सा हो गया है, इसका प्रतिकार धर्मच्युत न होनेकी दुढ प्रतिज्ञा न होगी, तबतक किसी

कैसे हो?' यह विचारणीय है। भी आन्दोलनसे, प्रचारसे और कानूनसे भ्रष्टाचार, असदाचार

और दुष्कर्म नहीं रुकेंगे। जबतक यह पापका प्रवाह न हमारी समझसे इसका एक ही उपाय है और वह रुकेगा, इसका उद्गमस्थल न सूखेगा, तबतक दु:खका उपाय है अध्यात्मप्रधान प्राचीन हिन्दू-संस्कृतिकी पुनः

प्रतिष्ठा। जबतक मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवान् नहीं प्रवाह भी नहीं रुक सकेगा। अत: हम सबका कर्तव्य होंगे, जबतक पुनर्जन्म और कर्मफलमें सुदृढ विश्वास है कि अध्यात्मप्रधान संस्कृतिकी प्रतिष्ठामें एवं सदाचारमें

नहीं होगा, जबतक शास्त्रोंके अनुसार पवित्र जीवन लग जायँ, तभी हमारा, हमारे देश और धर्मका मंगलमय बनाना हमारे जीवनकी अनिवार्य साधना न होगी और कल्याण होगा। यह ध्रुव सत्य है।

### - संतकी विचित्र असहिष्णुता

### एक सन्त नौकामें बैठकर नदी पार कर रहे थे। सन्ध्याका समय था। आखिरी नाव थी, इससे

उसमें बहुत भीड़ थी। सन्त एक किनारे अपनी मस्तीमें बैठे थे। दो-तीन मनचले आदिमयोंने सन्तका

मजाक उड़ाना शुरू किया। सन्त अपनी मौजमें थे, उनका इधर ध्यान ही नहीं था। उन लोगोंने सन्तका ध्यान खींचनेके लिये उनके समीप जाकर पहले तो शोर मचाना और गालियाँ बकना

आरम्भ किया। जब इसपर भी सन्तकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे न हटी, तब वे सन्तको धीरे-धीरे ढकेलने लगे। पास ही कुछ भले आदमी बैठे थे। उन्होंने उन बदमाशोंको डाँटा और सन्तसे

कहा—'महाराज! इतनी सहनशीलता अच्छी नहीं है, आपके शरीरमें काफी बल है, आप इन बदमाशोंको जरा-सा डाँट देंगे तो ये अभी सीधे हो जायँगे।' अब सन्तकी दुष्टि उधर गयी। उन्होंने कहा—

'भैया! सहनशीलता कहाँ है, मैं तो असहिष्णु हूँ, सहनेकी शक्ति तो अभी मुझमें आयी ही नहीं है। हाँ, मैं इसका प्रतीकार अपने ढंगसे कर रहा था। मैं भगवानुसे प्रार्थना करता था कि 'वे कृपा कर इनकी बुद्धिको सुधार दें, जिससे इनका हृदय निर्मल हो जाय।' सन्तकी और उन भले आदिमयोंकी

बात सुनकर बदमाशोंके क्रोधका पारा बहुत ऊपर चढ़ गया। वे सन्तको उठाकर नदीमें फेंकनेको

तैयार हो गये। इतनेमें ही आकाशवाणी हुई—'हे सन्तशिरोमणि! ये बदमाश तुम्हें नदीके अथाह जलमें डालकर डुबो देना चाहते हैं, तुम कहो तो इनको अभी भस्म कर दिया जाय।' आकाशवाणी सुनकर बदमाशोंके होश हवा हो गये और सन्त रोने लगे। सन्तको रोते हुए देखकर बदमाशोंने

निश्चित समझ लिया कि अब यह हमलोगोंको भस्म करनेके लिये कहनेवाले हैं। वे काँपने लगे। इसी बीचमें सन्तने कहा—'ऐसा न करें स्वामी! मुझ तुच्छ जीवके लिये इन कई जीवोंके प्राण न लिये जायँ। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मेरे मनमें इनके विनाशकी नहीं, परंतु

इनके सुधारकी सच्ची आकांक्षा है तो आप इनको भस्म न करके इनके मनमें बसे हुए कुविचारों और कुभावनाओंको, इनके दोषों और दुर्गुणोंको तथा इनके पापों और तापोंको भस्म करके इनको

निर्मल हृदय और सुखी बना दीजिये।' आकाशवाणीने कहा—'सन्तिशरोमणि! ऐसा ही होगा। तुम्हारा भाव बहुत उँचा है। तुम हमको अत्यन्त प्यारे हो। तुम्हें धन्य है।' Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

तू ही माता, तू ही पिता है! संख्या २ ] तू ही माता, तू ही पिता है! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) प्रभुकी सृष्टि अत्यन्त सुन्दर है। वे तो सुन्दरताकी हम तेरे हैं तुही हमारा सब से प्यारा एक तुही। प्रतिमूर्ति ही हैं। इतना ही नहीं, सब नामोंमें, सब रूपोंमें ज्ञान प्रेम औ सुखसे पूरित करनेवाला एक तुही॥ भी वे ही बसते हैं। उनके नाम-रूप-सभी अनन्त हैं। ऋषिने परमेश्वरको पिता, भ्राता, मित्र और पुत्र-शंकालु कहता है-फिर भी हम क्यों आकृष्ट हों जैसे निकटके सम्बोधनों से पुकारा है-प्रभुकी ओर ? वेदके ऋषि कारण देते हैं - 'त्वमस्माकं पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां त्वामग्ने तवा स्मासि।' (ऋग्वेद ८।९२।३२) 'तुम हमारे हो शम्या तनूरु चम्। भ्रात्राय हम तुम्हारे हैं।' स्वामी रामतीर्थने इसी भावमें विभोर त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्वं होकर कहा था—'तारे क्या रोशनीसे न्यारे हैं! तुम सखा सुशेवः पास्याधृष:॥ हमारे हो, हम तुम्हारे हैं!!' कितना प्यारा, कितना (ऋग्वेद २।१।९) मनोहर, कितना आकर्षक है, आत्मीयताका यह सम्बन्ध!' 'हे अग्ने, आप हमारे पालक पिता हैं, दयालु भ्राता और जब यह स्थिति है तो हमें पूरी छूट है कि हम उनसे हैं, सुखदाता मित्र हैं और पुत्रकी भाँति हमारे त्राता हैं। इन नाना रूपोंमे आप अपने उपासकोंको लाभ पहुँचाते चाहे जो सम्बन्ध स्थापित कर लें। तुलसीदासजी भी तो भगवान् रामसे कहते हैं—'तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावे।' उनकी अभिलाषा मात्र इतनी है— पितारूपमें तू ही पालक, सखारूपमें सुहृद तुही। 'ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै।' वैदिक पुत्ररूपमें त्राता है तू, दयाशील भ्राता तू ही॥ ऋषिकी अनुभूति है—स नो बन्धुर्जनिता स विधाता वेदका एक और वचन है-धामानि वेद भुवनानि विश्वा॥ (यजुर्वेद ३२।१०) अग्निं मन्ये पितरमग्निमापि-वह परमेश्वर हम सबका बन्धु है, भाई है। वह मग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्॥ हम सबको जन्म देनेवाला है। वह जानता है, सारे (ऋग्वेद १०।७।३) धामोंको, सारे भुवनोंको। गीता कहती है—'गतिर्भर्ता 'अग्निरूप परमेश्वरको ही मैं सदा अपना पिता, प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।' (९।१८) अग्रणी, सखा, भ्राता और मित्र मानता हूँ।' प्रभु हमारे 'अग्निमीडे'—अग्निकी प्रार्थनासे ऋग्वेदका पिता हैं, पितामह हैं, अन्तरात्मा हैं। वे ही हमारे त्राता श्रीगणेश हुआ। इन्हीं अग्निरूप परमेश्वरसे ऋषिकी हैं, सुखदाता हैं। हम इस तथ्यको समझ लें तो हमारा प्रार्थना है—स नः पितेव सुनवे उग्ने सुपायनो भव। कल्याण ही कल्याण है। ऋषिके अन्तस्से निकली यह सचस्वा नः स्वस्तये। (ऋग्वेद १।१।९) ऋचा हमारी मार्गद्रष्ट्री है-'अग्निदेव! आप हमें पिताकी भाँति उत्तम ज्ञान त्राता नो बोधि ददृशान आपि-प्रदान करें, जिससे हमें सारे सुखोंकी प्राप्ति हो और रभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्। हमारा कल्याण हो।' पिता जहाँ पुत्रका प्रेमपूर्वक सखा पिता पितृतमः पितृणां पालन-पोषण और रक्षण करता है, वहाँ वह रिक्थ कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः॥ (पैत्रिक सम्पत्ति)-के रूपमें अपने ज्ञानका भण्डार भी (ऋग्वेद ४।१७।१७) पुत्रको दे डालता है और जहाँ ज्ञान है, वहाँ सुख होगा 'परमात्मा हमारे त्राता हैं, रक्षक हैं। हम जो कुछ ही, कल्याण होगा ही। उनकी यह भावना पग-पगपर करते हैं, वह सब परमात्मा देखते हैं। वे सर्वव्यापी हैं। वे हमारे अन्तरात्मा हैं। वे हमारे मित्र हैं, पिता हैं, मुखरित होती है-

भाग ९२ पितामह हैं। वे ही कर्ता हैं, वे ही जीवनदाता, जगदीश्वर पहुँचाती है। और पिता! हमारे लिये पिताके कष्ट-हैं। हम इस तथ्यको जानें और समझें।' ऋषियोंकी सहनका, उनके त्याग का कोई पार है ? प्रभु हमारा पिता आत्मिक प्रयोगशालामें ऐसे अनेक मन्त्र भरे पडे हैं। वे भी है, माता भी। उसकी अपरम्पर कृपा है हमपर। क्या शतक्रतुरूपी परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं-नहीं देता वह हमें? त्वं हि नः पिता वसो त्वां माता शतक्रतो अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्। बभृविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। (ऋग्वेद ८। ९८। ११) प्रेमन्धः ख्यन्निःश्रोणो भूत्॥ (ऋग्वेद ८।७९।२) 'शतक्रतो! अनन्तसामर्थ्यवान् प्रभो! तू ही हमारा 'परमेश्वर नंगेको वस्त्रसे ढँकते हैं। रोगीको वे पिता है, तू ही हमारी माता, तू ही हमें ठौर-ठिकाना चंगा करते हैं। अन्धेको वे दृष्टि देते हैं, जिससे वह देनेवाला है। तू हमें सुख प्रदान कर।' भलीभाँति देखने लगता है। लँगड़ा व्यक्ति उनकी कृपासे मित्रो न सत्य उरुगाय॥ (ऋग्वेद १०।२९।४) चलने लगता है।' धन्य हैं वे दयालु प्रभु— हे प्रभु! तू हमारे सच्चे मित्रकी भाँति है; अर्थात्— अन्धेको तू दृष्टी देता लँगड़ेको चलनेकी शक्ति। तू ही माता तुही पिता है, बन्धु सखा है प्रभो तुही। रोगीको चंगा करता है, धन्वन्तरि है एक तुही।। जितने नाते हैं इस जगमें, सब नातोंमें बसा तुही॥ ऐसे सर्वसमर्थ प्रभुसे बढ़कर हमारा हितू और कौन हो सकता है ? अपने प्रेमसे हमें सदैव सराबोर रखनेवाले, कृपा माँगते हैं हम तेरी, तू सबका कल्याण करे। हमारे सभी अभावोंकी पूर्ति करनेवाले परमेश्वर हमारे तुझसे बढ़कर हितू कौन है? स्नेही प्यारा एक तुही॥ इन्द्ररूप भगवान्से भी ऋषि प्रार्थना करते हैं-सबके जन्मदाता, पालक और पोषक हैं। हम इस तथ्यको हृदयंगम करें तो हमारे मानसमें मानवमात्रके प्रति ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपिष्मसि। वयं घा सहज ही भ्रातृ-भावकी भावना भर उठेगी। ऋषि-वचन निह त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता॥ है— (ऋग्वेद ८।६६।१३) 'इन्द्रदेव! हम आपके उपासक ही हैं। हम आपके प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या। मातुर्गर्भे ही पुत्र हैं। आपकी ही कृपाके पात्र हैं, आपपर ही निर्भर भरामहे॥ (ऋग्वेद ८।८३।८) रहकर हम अपना जीवन बिताते हैं। हे पुज्य, हे मघवन्! 'माताके गर्भसे ही हमें परस्पर भाईचारेका, भ्रातुत्वका आपसे बढ़कर सुखदाता और कोई नहीं है।' वरदान मिला है। एक-दूसरेके साथ मिलकर रहने और तू ही सच्चा मित्र हमारा, सुखदाता है एक तुही। मिल-बाँटकर खाने-पीनेका भाव हमें अपने जन्म-कालसे ही प्राप्त हुआ।' मानवमात्रके प्रति भ्रातृत्वका किसे पुकारें हम संकटमें? माता त्राता एक तुही॥ मातासे बढ़कर प्यारा कौन होता है? हम बिना हमारा यह गुण, यह पारस्परिक प्रेम सतत बढ़ता रहे, किसी संकोचके उससे सब कुछ माँग लेते हैं। उसे यहीं हमारी प्रभुसे प्रार्थना है— हमारी सारी सुख-सुविधाओं, सारी आवश्यकताओंका हम सब तेरे बेटे हैं प्रभु, मिल जुल कर हम रहें सदा। ध्यान रहता है। नाना कष्ट उठाकर माँ हमें भरपूर सुख जन्मजात यह प्रेम परस्पर सदा बढ़ाता रहे तुही॥ हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः। इति यस्य मितः परमार्थगितः स नरो भवसागरमुत्तरि।। हरि ही जगत् हैं, जगत् ही हरि है, हरि और जगत्में किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। जिसकी ऐसी मित है, उसीकी परमार्थमें गति है, वह पुरुष संसार-सागरको तर जाता है।[शुकरहस्य]

संख्या २ ] भगवान् शंकर भगवान् शंकर (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) 'शंकर' का अर्थ है—कल्याण करनेवाला। अत: गृणन्कृतार्थो अहं भवन्नाम भगवान् शंकरका काम केवल दूसरोंका कल्याण करना काश्यामनिशं भवान्या। वसामि है। जैसे संसारमें लोग अन्नक्षेत्र खोलते हैं, ऐसे ही मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं भगवान् शंकरने काशीमें मुक्तिका क्षेत्र खोल रखा है। दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥ गोस्वामीजी महाराज कहते हैं-(युद्ध० १५।६२) 'हे प्रभो! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर। दिन-रात पार्वतीके साथ काशीमें रहता हूँ और वहाँ जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥ मरणासन्न मनुष्योंको उनके मोक्षके लिये आपके तारक-(रा०च०मा० ४।१ सो०) शास्त्रमें भी आता है—'काशीमरणान्मुक्तिः।' मन्त्र राम-नामका उपदेश देता हूँ।' काशीको 'वाराणसी' भी कहते हैं। 'वरुणा' और गोस्वामीजी कहते हैं-'असी'—दोनों नदियाँ गंगाजीमें आकर मिलती हैं, उनके महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥ बीचका क्षेत्र 'वाराणसी' कहलाता है। इस क्षेत्रमें (रा०च०मा० १।१९।३) मरनेवालेकी मुक्ति हो जाती है। भगवान् शंकरका राम-नामपर बहुत स्नेह है। एक यहाँ शंका होती है कि काशीमें मरनेवालेके बार कुछ लोग एक मुरदेको श्मशानमें ले जा रहे थे और पापोंका क्या होता है ? इसका समाधान है कि काशीमें 'राम–नाम सत् है' ऐसा बोल रहे थे। शंकरजीने राम– मरनेवाले पापीको पहले 'भैरवी यातना' भूगतनी पडती नाम सुना तो वे भी उनके साथ हो गये। जैसे पैसोंकी है, फिर उसकी मुक्ति हो जाती है। भैरवी यातना बड़ी बात सुनकर लोभी आदमी उधर खिंच जाता है, ऐसे ही कठोर यातना है, जो थोड़े समयमें सब पापोंका नाश कर राम-नाम सुनकर शंकरजीका मन भी उन लोगोंकी ओर देती है। काशीके केदारखण्डमें मरनेवालेको तो भैरवी खिंच गया। अब लोगोंने मुरदेको श्मशानमें ले जाकर यातना भी नहीं भोगनी पड़ती! जला दिया और वहाँसे लौटने लगे। शंकरजीने देखा तो विचार किया कि बात क्या है ? अब कोई आदमी राम-सालगरामजीने कहा है-नाम ले ही नहीं रहा है! उनके मनमें आया कि उस जग में जिते जड़ जीव जाकी अन्त समय, मुरदेमें ही कोई करामात थी, जिसके कारण ये सब लोग जम के जबर जोधा खबर लिये करे। राम-नाम ले रहे थे। अत: उसीके पास जाना चाहिये। काशीपति विश्वनाथ वाराणसी वासिन की, फाँसी यम नाशन को शासन दिये करे॥ शंकरजीने श्मशानमें जाकर देखा कि वह तो जलकर राख हो गया है। अतः शंकरजीने उस मुख्की राख मेरी प्रजा है के किम पेहैं काल दण्डत्रास, अपने शरीरमें लगा ली और वहीं रहने लगे! राख और सालग, यही विचार हमेशा हिये करे। मसान—दोनोंके पहले अक्षर लेनेसे 'राम' हो जाता है! तारक की भनक पिनाकी यातें प्रानिन के, एक कविने कहा है-प्रान के पयान समय कान में किये करे॥

काशीमें मरनेवालोंके दायें कानमें भगवान शंकर

कहते हैं-

तारकमन्त्र—'राम' नाम सुनाते हैं, जिसको सुननेसे

उनकी मुक्ति हो जाती है। अध्यात्मरामायणमें शंकरजी

कीनी अर्धंगा प्यारी लागी गिरिजेश को॥

रुचिर रकार बिन तज दी सती-सी नार,

कीनी नाहिं रित रुद्र पाय के कलेश को। गिरिजा भई है पुनि तप ते अपर्णा तबे,

[भाग ९२ भिन्नकी तरह दीखते हैं। कुछ मूर्खलोग हरि और हरको विष्नुपदी गंगा तउ धूर्जटी धरि न सीस, भिन्न-भिन्न बताते हैं, जो विनाश करनेका अस्त्र भागीरथी भई तब धारी है अशेष को। (विनाश-अस्त्रम्) है। बार-बार करत रकार व मकार ध्वनि, (२) हरि और हर-दोनोंकी प्रकृति एक ही है पूरण है प्यार राम-नाम पे महेश को॥ सतीके नाममें 'र' कार अथवा 'म' कार नहीं हैं, अर्थात् दोनों एक ही 'ह्र' धातुसे बने हैं, पर प्रत्यय ('इ' और 'अ')-के भेदसे दोनों भिन्नकी तरह दीखते हैं। इसलिये शंकरजीने सतीका त्याग कर दिया। जब सतीने हिमालयके यहाँ जन्म लिया, तब उनका नाम गिरिजा कुछ मूर्खलोग हरि और हरको भिन्न-भिन्न बताते हैं, (पार्वती) हो गया। इतनेपर भी शंकरजी मुझे स्वीकार जो शास्त्रसे विरुद्ध (विना-शास्त्रम्) है। अतः शिव और विष्णुमें कभी भेदबुद्धि नहीं करनी करेंगे या नहीं—ऐसा सोचकर पार्वतीजी तपस्या करने लगीं। जब उन्होंने सुखे पत्ते भी खाने छोड दिये; तब चाहिये— उनका नाम 'अपर्णा' हो गया। गिरिजा और अपर्णा— शिवश्च हृदये विष्णोः विष्णोश्च हृदये शिवः। दोनों नामोंमें 'र' कार आ गया तो शंकरजी इतने प्रसन्न कहीं-कहीं ऐसा भी आता है कि वैष्णव शिवलिंगको हुए कि उन्होंने पार्वतीजीको अपनी अर्धांगिनी बना नमस्कार न करे, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि लिया। इसी तरह शंकरजीने गंगाको स्वीकार नहीं किया, वैष्णवका शंकरसे द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि परंतु जब गंगाका नाम 'भागीरथी' पड गया, तब वैष्णवोंके मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्डुका जो तिलक रहता है, शंकरजीने उनको अपनी जटामें धारण कर लिया। अत: उसमें विष्णुके दो चरणोंके बीचमें लक्ष्मीजीका लाल भगवान् शंकरका राम-नाममें विशेष प्रेम है। वे दिन-रंगका चिह्न (श्री) रहता है। लक्ष्मीजीको शिवलिंगके रात राम-नामका जप करते रहते हैं-पास जानेमें लज्जा आती है। अत: वैष्णवोंके लिये तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥ शिवलिंगको नमस्कार करनेका निषेध आया है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है-(रा०च०मा० १।१०८।७) केवल दुनियाके कल्याणके लिये ही वे राम-'सेवक स्वामि सखा सिय पी के।' नामका जप करते हैं, अपने लिये नहीं। (रा०च०मा० १।१५।२) शंकरके हृदयमें विष्णुका और विष्णुके हृदयमें अर्थात् भगवान् शंकर रामजीके सेवक, स्वामी और सखा—तीनों ही हैं। रामजीकी सेवा करनेके लिये शंकरका बहुत अधिक स्नेह है। शिव तामसमूर्ति हैं और विष्णु सत्त्वमूर्ति हैं, पर एक-दूसरेका ध्यान करनेसे शिव शंकरने हनुमान्जीका रूप धारण किया। वानरका रूप श्वेतवर्णके और विष्णु श्यामवर्णके हो गये। वैष्णवोंका उन्होंने इसलिये धारण किया कि अपने स्वामीकी सेवा तो करूँ, पर उनसे चाहूँ कुछ भी नहीं; क्योंकि वानरको तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) त्रिशूलका रूप है और शैवोंका न रोटी चाहिये, न कपड़ा चाहिये और न मकान तिलक (त्रिपुण्डू) धनुषका रूप है। अत: शिव और चाहिये। वह जो कुछ भी मिले, उसीसे अपना निर्वाह विष्णुमें भेदबुद्धि नहीं होनी चाहिये— कर लेता है। रामजीने पहले रामेश्वर शिवलिंगका पूजन संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। किया, फिर लंकापर चढाई की। अत: भगवान् शंकर ते नर करहिं कलप भिर घोर नरक महुँ बास॥ रामजीके स्वामी भी हैं। रामजी कहते हैं—'संकर प्रिय (रा०च०मा० ६।२) उभयोः प्रकृतिस्त्वेका प्रत्ययभेदेन भिन्नवद् भाति। मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भिर घोर नरक महुँ बास॥' अतः भगवान् शंकर कलयति कश्चिन्मूढा हरिहरभेदं विनाशास्त्रम्॥ अर्थात् (१) हरि और हर-दोनोंकी प्रकृति रामजीके सखा भी हैं। (बीस्त्रिकं मत्व)ं उद्धर के हि, एक तिस्क्षकं पेक्क् के नी arma की मिन् एक एउं सिन प्राप्ति के एक कि प्राप्ति के कि प्राप्त

```
संख्या २ ]
                                      योगिराज शिवका सौन्दर्य
हैं। वे थोडी–सी उपासना करनेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं।
                                                 मायासे मोहित होकर अपने सिरपर हाथ रखा तो वह
इस विषयमें अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बधिक था।
                                                 तत्काल भस्म हो गया। इस प्रकार सीधे-सरल होनेसे
एक दिन उसको खानेके लिये कुछ नहीं मिला। संयोगसे
                                                 शंकर किसीपर सन्देह करते ही नहीं, किसीको जानना
उस दिन शिवरात्रि थी। रात्रिके समय उसने वनमें एक
                                                  चाहते ही नहीं, नहीं तो वे पहले ही भस्मासूरकी नीयत
                                                 जान लेते।
शिवमन्दिर देखा। वह भीतर गया। उसने देखा कि
शिवलिंगके ऊपर स्वर्णका छत्र टँगा हुआ है। अत: वह
                                                       भगवान् शंकरसे वरदान माँगना हो तो भक्त
उस छत्रको उतारनेके लिये शिवलिंगपर चढ गया। इसने
                                                 नरसीजीकी तरह माँगना चाहिये, नहीं तो ठगे जायँगे।
अपने-आपको मेरे अर्पण कर दिया-ऐसा मानकर
                                                 जब नरसीजीको भगवान् शंकरने दर्शन दिये और उनसे
भगवान् शंकर उसके सामने प्रकट हो गये।
                                                 वरदान माँगनेके लिये कहा, तब नरसीजीने कहा कि जो
    एक कृतिया खरगोशको मारनेके लिये उसके पीछे
                                                 चीज आपको सबसे अधिक प्रिय लगती हो, वही
                                                 दीजिये। भगवान् शंकरने कहा कि मेरेको कृष्ण सबसे
भागी। खरगोश भागता-भागता एक शिवमन्दिरके भीतर
घुस गया। वहाँ वह शिवलिंगकी परिक्रमामें भागा तो
                                                  अधिक प्रिय लगते हैं, अत: मैं तुम्हें उनके ही पास ले
आधी परिक्रमामें ही कुतियाने खरगोशको पकड़ लिया।
                                                  चलता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् शंकर उनको गोलोक
शिवलिंगकी आधी परिक्रमा हो जानेसे उस खरगोशकी
                                                 ले गये। तात्पर्य है कि शंकरसे वरदान माँगनेमें अपनी
मुक्ति हो गयी।
                                                 बुद्धि नहीं लगानी चाहिये।
     भगवान् शंकर बहुत सीधे-सरल हैं। भस्मासुरने
                                                      शंकरकी प्रसन्नताके लिये साधक प्रतिदिन आधी
उनसे यह वरदान माँगा कि मैं जिसके सिरपर हाथ रखुँ,
                                                 रातको (ग्यारहसे दो बजेके बीच) ईशानकोण (उत्तर-
वह भस्म हो जाय तो शंकरजीने उसको वरदान दे दिया।
                                                  पूर्व)-की तरफ मुख करके 'ॐ नम: शिवाय' मन्त्रकी
अब पार्वतीको पानेकी इच्छासे वह उलटे शंकरजीके ही
                                                 एक सौ बीस माला जप करे। यदि गंगाजीका तट हो
सिरपर हाथ रखनेके लिये भागा। तब भगवान् विष्णु उन
                                                 तो अपने चरण उनके बहते हुए जलमें डालकर जप
दोनोंके बीचमें आ गये और भस्मासुरको रोककर बोले
                                                 करना अधिक उत्तम है। इस तरह छ: मास करनेसे
कि कम-से-कम पहले परीक्षा करके तो देख लो कि
                                                  भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं और साधकको दर्शन,
शंकरका वरदान सही है या नहीं! भस्मासुरने विष्णुकी
                                                 मुक्ति, ज्ञान दे देते हैं।
                               योगिराज शिवका सौन्दर्य
                                     ( श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए० )
                                                              अर्द्धनिमीलित
                                                                                          निराले।
                      औघड़
                                                                               नयन
                              दानी।
 जय
                                                              कानों
                                                                      में
                                                                           दो
                                                                                           प्यारे ॥
                                                                                 कुण्डल
                           वरदानी॥
 बारम्बार
                                                           सुहाये
                                                 शीश
                                                                     शीतल
                   शिखरों
                                           डेरा।
                                                                                चन्दा।
            हिम
                             पर
                                   तुम्हरा
                                                         सजे
                                                                हें
            साँझ-सबेरे
                                                  अंग
                                                                      नाग
                                                                              भुजंगा॥
                             करते
                                          फेरा॥
                                                                          मस्ती
 चहुँदिश
                                                                                          निराली।
            फैली
                     है
                           हिमरासी।
                                                              तन
                                                                    की
                                                                                 अजब
          चाँदनी
                                                              स्मित
                                                                          मुख-मुद्रा
                                                                                         मनहारी॥
 खिली
                            उदासी॥
                     हरे
                                                                           योगी-भूपा।
                                                 शोभित
                                                              श्रीशिव
            श्वेत
                               सलोनी
                     धवल
                                          काया।
                                                 पद्मासन
                                                                     रूप
                                                                              अनूपा॥
            कटिपर
                                 अति
                                          भाया॥
                                                                      जपें
                                                              पणव
 सिर
             सुन्दर
                     जटा
                             विराजे।
                                                                                          स्वरूपा।
                                                                      अनादि
                                                                                अनन्त
        त्रिपुण्ड्र
                              राजे॥
                                                              नाम
                                                                                         अरूपा॥
 भस्म
                 भाल
                        पर
```

उपनिषदोंमें आये कतिपय आख्यान

## (डॉ० श्री के० डी० शर्माजी)

भाग ९२

महर्षि आरुणिका पुत्र श्वेतकेतुको उपदेश

('तत्त्वमिस')—छान्दोग्योपनिषद्के षष्ठ अध्यायमें

'सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित आत्माका एकत्व' समझानेके लिये

पिता और पुत्रकी आख्यायिका दी गयी है। महर्षि

आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतुको उपदेश देते हैं कि

'जिसके द्वारा अश्रुत (बिना सुना हुआ) श्रुत (सुना

हुआ) हो जाता है, अमत (बिना विचार किया हुआ)

मत (विचार किया हुआ) हो जाता है और अविज्ञात

(अनिश्चित) विज्ञात (निश्चित) हो जाता है, वह सत्य

है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! 'तत्त्वमसि' अर्थात्

वह परब्रह्म परमात्मा तू ही है।' यहाँ श्रुतिका भाव यह

है कि जब कारणरूप माया और कार्यरूप देहके

विकारकी निवृत्ति हो जाती है, तब जीव ब्रह्म ही हो

जाता है। जिस प्रकार मिट्टीके पिण्डद्वारा मिट्टीके सम्पूर्ण

पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि मिट्टीके सम्पूर्ण पदार्थोंके नाम तो केवल वाणीके विकार हैं, सत्य तो केवल

मृत्तिका (मिट्टी) ही है, उसी प्रकार सत्से उत्पन्न हुआ

यह सत्स्वरूप सम्पूर्ण जगत् सन्मात्र ही है। 'तत्त्वमिस'

इस वाक्यमें 'तत्' पद ईश्वरकी उपाधि 'माया' और

'त्वम्' पद जीवकी उपाधि 'अन्त:करण'—इन दोनोंसे

रहित शुद्ध चैतन्य अंशकी एकता कही गयी है अर्थात् जो प्रकृतिसे परे और वाणीका विषय नहीं है, निर्मल

ज्ञानचक्षुओंसे जाना जा सकता है तथा शुद्ध चैतन्यघन अनादि है, तुम वही ब्रह्म हो-ऐसी भावना अपने

अन्त:करणमें करनेमें परमात्माकी अनुभूति होती है।

'तत्त्वमसि' यह वेदान्त-महावाक्य है, जो जीव तथा

इन्द्र-विरोचन-आख्यायिका-छान्दोग्योपनिषद्के

ब्रह्मकी एकताका बोधक है।

परब्रह्म परमात्मा आनन्दमय है—तैत्तरीयोपनिषद्की प्रदान करते हैं। अतः ब्रह्मसूत्र (१।१।१२)-में कहा

गया है कि 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' अर्थात् श्रुतिमें

ब्रह्मानन्दवल्लीके अष्टम अनुवाकमें आनन्द-सम्बन्धी

मीमांसा (विचार) करते हुए यह भाव दिखाया गया है

प्रयुक्त हुआ है। अत: 'आनन्दमय' शब्द परब्रह्मका ही

कि मानव-लोकका सबसे महान् आनन्द परब्रह्म परमात्माके

(४।३।३२)-में भी कहा गया है कि 'समस्त प्राणी

परमात्मासम्बन्धी आनन्दके किसी एक अंशको लेकर ही जीते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद्की भृगुवल्लीमें महर्षि वरुण

अपने पुत्र भृगुको उपदेश देते हैं कि 'ये सब प्रत्यक्ष

दीखनेवाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर

जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्तमें इस लोकसे

प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसको तत्त्वसे

जाननेकी इच्छा करते हैं, वही ब्रह्म है।' भृगुने निरन्तर

तप करते हुए क्रमश: यह निश्चित किया कि 'अन्न ब्रह्म

है, प्राण ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, विज्ञान ब्रह्म है।' अन्तमें

भृगुने निश्चयपूर्वक जाना कि 'सचमुच आनन्द ही ब्रह्म

है; क्योंकि आनन्दसे ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं,

उत्पन्न होकर आनन्दसे ही जीते हैं और इस लोकसे

प्रयाण करते हुए अन्तमें आनन्दमें ही प्रविष्ट हो जाते

हैं। इस प्रकार जाननेपर भृगुको परब्रह्मका पूर्ण ज्ञान हो

गया कि परब्रह्म परमात्मा आनन्दस्वरूप है।' तै०उ० (२।४, २।९)-में कहा गया है कि ब्रह्मके आनन्दमय

स्वरूपको जान लेनेवाला विद्वान् कभी भयभीत नहीं

होता है। तै०उ० (२।७)-के अनुसार 'परब्रह्म परमात्मा

रसस्वरूप (आनन्दमय) है। यह जीवात्मा इस रसको

प्राप्त करके ही आनन्दयुक्त होता है। यदि आकाशकी

भाँति व्यापक आनन्दस्वरूप परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता और कौन प्राणोंकी चेष्टा कर

सकता? नि:सन्देह यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है।' अत: मनुष्यको यह दृढ्तापूर्वक

विश्वास करना चाहिये कि इस जगतुके कर्ता-हर्ता

परब्रह्म परमेश्वर अवश्य हैं और वे ही समस्त प्राणियोंको

पूर्णानन्द, नित्यानन्द, अखण्डानन्द और अनन्त आनन्द

आनन्दकी तुलनामें अत्यन्त ही तुच्छ है। बृहदारण्यकोपनिषद् वाचक है।

बारम्बार 'आनन्द' शब्द परब्रह्म परमात्माके लिये

उपनिषदोंमें आये कतिपय आख्यान संख्या २ ] अष्टम अध्यायके सप्तम खण्डमें वर्णन है कि प्रजापतिने साधक आत्मरित, आत्मक्रीड और आत्मानन्द होता है कहा कि 'जो आत्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युहीन, तथा वह न तो मृत्युको देखता है, न रोगको और न ही विशोक, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और दु:खको। वह आत्मरूप ही देखता है।' अन्तमें सत्यसंकल्प है, उसका अन्वेषण करना चाहिये अर्थात् सनत्कुमारजी नारदजीको उपदेश देते हैं— उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। देवताओंके राजा इन्द्र आहारशृद्धौ सत्त्वशृद्धिः सत्त्वशृद्धौ ध्रुवा स्मृतिः और असुरोंके राजा विरोचन दोनोंने ही परम्परासे स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। (छा०उ० प्रजापतिकी बातको जान लिया तथा प्रजापतिके पास ७।२६।२) आहार शुद्ध होनेपर अन्त:करण (मन, बुद्धि, जाकर बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यवास किया। तत्पश्चात् विरोचन बिना ज्ञान प्राप्त किये ही वापस आ गया परंतु चित्त, अहंकार)-की शुद्धि होती है, अन्त:करणकी इन्द्रने प्रजापतिके यहाँ एक सौ एक वर्ष ब्रह्मचर्यवास शुद्धि होनेपर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृतिकी प्राप्ति किया। तत्पश्चात् प्रजापतिने इन्द्रको उपदेश दिया कि 'हे होनेपर हृदयमें स्थित सम्पूर्ण ग्रन्थियों (राग-द्वेष, मोह इन्द्र! वायु, विद्युत्, अभ्र (मेघ) और मेघध्वनि—ये सब आदि दोषों)-का विनाश हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा अशरीर हैं। जिस प्रकार ये सब आकाशसे समुत्थानकर हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, वह सब आहार है। सूर्यकी परम ज्योतिको प्राप्त हो अपने स्वरूपमें परिणत अतः ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका)-हो जाते हैं, उसी प्रकार यह सम्प्रसाद (जीव) इस शरीरसे के विषय (तन्मात्राएँ) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध शुद्ध समुत्थान कर देहात्मभावनाका त्यागकर अपने स्वाभाविक एवं सात्त्विक होनेसे ही परमात्माकी अनुभूति होती है। स्वरूपमें स्थित हो जाता है। जो ऐसा अनुभव करता है प्रजापतिद्वारा 'द-द-द' से दम-दान और दयाका कि मैं देखूँ, सूँघूँ, शब्द बोलूँ, श्रवण करूँ और मनन करूँ, उपदेश - बृहदारण्यकोपनिषद्के पंचम अध्यायके द्वितीय वह आत्मा है एवं मन आत्माका दिव्य चक्षु है।' इस ब्राह्मणमें कहा गया है कि देव, मनुष्य और असुर— प्रकारसे चिन्तन, मनन तथा निदिध्यासन (आत्मचिन्तन) प्रजापतिके इन तीन पुत्रोंने प्रजापतिके यहाँ ब्रह्मचर्यवास करनेसे परमात्माकी अनुभूति होती है। करनेके पश्चात् प्रजापितसे उपदेश देनेकी प्रार्थना की। नारद-सनत्कुमार-आख्यायिका— प्रजापितने इन सभीको 'द' अक्षरका उपदेश दिया। छान्दोग्योपनिषद्के सप्तम अध्यायमें आख्यायिका है कि प्रजापतिके इस अनुशासनकी मेघगर्जनारूपी दैवी वाक् सर्वविद्यासम्पन्न देवर्षि नारद अनात्मज्ञ होनेके कारण आज भी द-द-द-इस प्रकार अनुनाद करती है अर्थात् शोक करते हुए सनत्कुमारजीके पास जाकर कहते हैं कि भोगप्रधान देवो! इन्द्रियोंका 'दमन' करो, संग्रहप्रधान 'मैं मन्त्रवेत्ता हूँ, आत्मवेत्ता नहीं हूँ। आप मुझे उपदेश मनुष्यो! भोगसामग्रीका 'दान' करो, क्रोध-हिंसाप्रधान असुरो! जीवोंपर 'दया' करो। अत: दम, दान और दें।' सनत्कुमारजी नाम, वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान आदिको उत्कृष्टतर बताते हुए 'भूमा' का उपदेश देते दया—इन तीनों सद्गुणोंको आचरणमें लानेसे परमात्माकी अनुभूति होती है। तै०उ० (१।११)-के अनुसार **'श्रद्धया** हैं कि 'जहाँ कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता, वह भूमा है। जो देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भूमा है, वही अमृत है। भूमा ही नीचे है, वही ऊपर भिया देयम्। संविदा देयम्। अर्थात् श्रद्धापूर्वक दान है, वही आगे है, वही दायीं ओर है, वही बायीं ओर देना चाहिये, अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये, आर्थिक है और वही यह सब है।' आत्मरूपसे भी 'भूमा' का स्थितिके अनुसार देना चाहिये, लज्जासे देना चाहिये, भगवान्के भयसे देना चाहिये तथा विवेकपूर्वक निष्काम आदेश किया जाता है। इस प्रकार देखनेवाला, मनन करनेवाला तथा विशेषरूपसे इस प्रकार जाननेवाला भावसे दान देना चाहिये।

'अहो पथिक कहियो उन हरि सौं''''

# ( श्रीअर्जुनलालजी बन्मल )

श्रीवृषभानुभवनका सौन्दर्य तीनों लोकोंमें आकर्षणका मथुरा जा रहे हैं, अपनी यह पीडा संकोचवश मैं किसीसे

केन्द्र बन गया है। इसमें निवास करनेवाली भगवान्

कह भी नहीं सकती। आज अर्द्धरात्रिके समय न जाने

श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीके दर्शन करने किसने आकर मुझे यह समाचार सुनाया। बस, उसी

देवलोकसे देववधुएँ गोपीरूप धारणकर नित्य ही इनके

पास आया करती हैं। श्रीराधारानीके साथ हास-

परिहासके उन क्षणोंमें उन्हें सुखद अनुभूतिका अनुभव

होता था, परंतु आज उस भवनमें प्रवेश करते ही उन देवांगनाओंको उदासीकी बयार बहती दिखायी पड़ी।

श्रीराधारानीके कक्षके समीप आते उन देववधुओंकी

पायलके घुँघरू और गलेमें धारण की गयी मालाके मोती स्वतः ही टूटकर आँगनमें बिखर गये। देवांगनाओंने

देखा, श्रीराधारानीका कक्ष भी शान्त है, दीपकके उजियारेमें भी अन्धकारकी झलक दिखायी दे रही थी। उन्होंने निकट जाकर देखा, दीपक में तेल भी है, बाती

भी है, परंतु वह जीवन्त नहीं है। सहसा ही उन्होंने देखा, श्रीराधारानीकी नित्य संगिनी सखियाँ एक-एक कर उनके कक्षमें प्रवेश करने लगी हैं। आज उनकी भी

पायलके घुँघरू शान्त हैं, उनका शृंगार भी मलिन है, मुखमण्डलका तेज भी लुप्तप्राय हो गया है। चारों ओर फैली नीरवता आज कुछ अप्रिय सन्देश दे रही है।

देववधुएँ इसका कारण समझनेका प्रयास करने ही लगी थीं कि झरोखेके समीप विराजी श्रीराधारानीके नयनोंमें

मोती-जैसे अश्रुबिन्दुओंकी झलक दिखायी पड़ी। उन्होंने

सहज भावसे ललिता सखीसे संकेत कर पूछा!

सुनै हैं स्याम मधुपुरी जात।

सकुचिन किह न सकत काहू सौं, गुप्त हृदय की बात॥ संकित बचन अनागत कोऊ, कहि जु गयौ अधरात।

नींद न परे, घटै निहं रजनी कब उठि देखीं प्रात॥ नंदनंदन तो ऐसै लागे, ज्यौं जल पुरइनि पात।

समयसे जागती हुई प्रभात होनेकी प्रतीक्षा करने लगी। मनमें मिलनकी लालसा लिये जल और कमल पुष्पोंका

> उदाहरण देते हुए कहने लगी, हे सखी! अब हम उनसे बिछुड़ तो गये परंतु कोई यह तो बता दे कि हमारा और उनका पुनर्मिलन कब होगा?

[भाग ९२

श्रीराधाजीके मनकी वेदनाको आत्मसात् करते हुए एक सखी सान्त्वना देते हुए कहने लगी, हे सखी, वे जा नहीं रहे, मथुरा जा चुके हैं,—

कहा परदेसी कौ पतियारौ। प्रीति बढ़ाइ चले मधुवन कौं, बिछुरि दियौ दुख भारौ॥

ज्यौं जल हीन मीन तरफत, त्यौं व्याकुल प्रान हमारौ। सूरदास प्रभुके दरसन बिनु, दीपक मौन अँधियारौ॥ परदेशीसे प्रीत कैसी? उनपर विश्वास करना भी उचित नहीं। वे तो हमसे प्रेम करके मथुरा चले गये और

हमें वियोगके महासागरमें डूबनेको छोड़ गये। जलके बिना जैसे मछली तडपती है, वैसे ही श्रीकृष्णके बिना हमारे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। हमें तो इस समय ऐसा आभास हो रहा है कि भवनमें छाया यह अन्धकार

उनके विरहका ही परिणाम है। इस सखीके मनोभावोंसे द्रवित होकर विसाखा कहने लगी.

अनाथन की सुधि लीजै। गोपी ग्वाल गाइ, गो-सुत सब,दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै॥

नैननि जलधारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै। इतनी विनती सुनौ हमारी, बारकहूँ पतियाँ लिखि दीजै॥

चरन कमल दरसन नव नौका, करुणासिन्धु जगत जस लीजै। सुरदास प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै॥

सूर स्याम संग तै बिछुरत हैं, कब ऐहैं कुसलात॥ हे स्वामी! हम दीन-हीन अपनी सखियोंकी सुधि (सूरसागर) Hinduisin, Discourd & Schernhitte: Hots Grand happa at MADEIN ITHE CALE BY THE INDICATE BY THE INDICATE BY THE PROPERTY OF THE

```
संख्या २ ]
                                          श्रीसरस्वती-स्तुति
गोप-गोपियाँ, गौएँ और बछड़े सब दुर्बल हो रहे हैं। हे
                                                  दिनकी बात है, ये ब्रजगोपियाँ यमुनातटपर श्रीकृष्णके
                                                  विरहमें उदास बैठी थीं, उन्होंने देखा सामने ही
माधव! तुम तो शीघ्र ही लौट आनेका आश्वासन देकर
गये थे परंतु बहुत लम्बा समय व्यतीत हो गया परंतु तुम
                                                  पगडण्डीपर एक युवक घोड़ेपर सवार हो मथुराकी ओर
                                                  जानेके लिये आ रहा है, एक सखीने उसे रोककर कहा,
नहीं आये।
                                                   'अहो पथिक कहियो उन हरि सौं भई बिरह ब्रज
     श्रीकृष्णके आनेकी प्रतीक्षामें एक दिन समस्त
गोपियाँ यमुना तटपर बैठ भावसमाधिमें लीन हो कान्हाको
                                                   नारी।' और इस ब्रजमें श्रीराधारानी तो लगभग पागल
सम्बोधितकर कहने लगीं—रे मोहन,
                                                  ही हो गयी हैं। उस पथिकने देखा, उन सब सखियोंकी
                                                  आँखोंमें अश्रुधारा पलकोंका बाँध तोड़कर मुखमण्डलपर
            चलो रे लाला,
                                 लौट चलो॥
                                                  बह रही थी, उनमेंसे एक सखीने उस पथिकसे पुनः
सूनी कदम्ब की ठण्डी छैंया, खोजे धुन वंशी की।
                                                  कहा, हे युवक! तुम हमारे ब्रजराजसे मिलकर कहना,
व्याकुल होके ब्रज न डुबा दें, लहरें जमुनाजी की।।
                                                  श्रीराधारानी, रात-दिन तुम्हारा स्मरणकर रोती रहती हैं,
दुध दही की भरी मटकियाँ, तोड़े कौन मुरारी।
                                                  कभी वे कालिन्दीसे पूछती हैं, यहाँ मेरे श्यामसुन्दर आये
अँसुअन जल से भरे गगरिया पनघट पै पनिहारी॥
                                                  थे क्या ? कभी वंशीवटसे पूछती हैं, तेरी शीतल छायामें
विकल हो रही मात यशोदा, नंदजी दुःख में खोये।
                                                  खड़े होकर मेरे मोहनने वंशीवादन किया था क्या? कभी
कुछ तो सोच अरे निर्मोही, ब्रज का कण कण रोये॥
                                                  सरोवरमें खिले कमलपुष्पोंसे पूछती हैं, क्या तुम्हारा
तेरे विरह में राधा रोवे, रोवैं ग्वाल और बाल।
                                                  सौन्दर्य निहारने मेरे प्रियतम आये थे? कभी गोपियोंके
खोई खोई फिरें रे गइयाँ, गोपी भूली ताल॥
                                                  घरोंमें तो कभी नन्दभवनमें जाकर मैयासे पूछती हैं, हे
भूले बिसरे उड़े रे पक्षी, रोती फिरैं ब्रजनार।
                                                  यशोदा मैया! तुमने मेरे माखनचोर कान्हाको देखा है?
सूख गई हैं ताल तलैया, सूखी कदम्ब की डार॥
                                                       सिखयोंके मुखसे उनकी ऐसी व्यथा-कथा सुनकर
गोपी ग्वाल बाल सब रोवैं, अँखियन बहे है नीर।
                                                  उस पथिकने मथुरा पहुँचकर श्रीकृष्णके पास जाकर
तड़पत रोवत फिरे रे राधा इकली जमुना तीर॥
                                                  सारा हाल कह सुनाया, जिसे सुनकर वे व्यथित हो उठे।
    हे मोहन, तुम्हारे विरहमें ब्रजकी कैसी दयनीय
दशा हो गयी है, यह तो तुम जान ही गये। हे कान्हा!
                                                  उन्होंने उन ब्रजगोपियोंको सान्त्वना देने उद्धवजीको ब्रज
श्रीराधारानीकी व्यथा हमसे देखी नहीं जाती। एक
                                                  भेजा।
                                    -श्रीसरस्वती-स्तुति <sup>-</sup>
                                 ( डॉ० श्रीमनोजकुमारजी तिवारी 'तत्त्वदर्शी')
 जय-जय स्वर जननी, शुभ मित करणी, जय माँ परम पुनीता।
                                                  माँ धवल मनोहर रूप सरोवर, हम बालक अज्ञानी।
 जय-जय वागीशा, जयति पुरीशा, जय-जय-जय शुभमीता॥
                                                  हे देवि सुरेश्वरि, हे सर्वेश्वरि, करो कृपा कल्याणी॥
                                                  सुर, नर, मुनि, ज्ञानी, ध्यावें प्राणी, वर दे मातु सुदानी।
 जय-जय महतारी, शुभ संचारी, विनत शीश पद कंजा।
 जय मातु दयाला, हृदय विशाला, जय जननी मद भंजा॥
                                                  वाणी, मित निर्मल, कर उर विह्वल, हर 'मनोज', तम प्राणी॥
 तव आश्रित माता, पद जलजाता लीन हृदय नर-नारी।
                                                  बन जन 'तत्त्वदर्शी', मार्ग प्रदर्शी, बनें सृष्टि हितकारी।
 कीजै अनुकम्पा, विनय निशंका, हो माँ मित अविकारी॥
                                                  जागृत हो प्रज्ञा, ऊर्जित संज्ञा, बुद्धि सृष्टि उपकारी॥
                                                       करूँ समर्पित माँ तुम्हें, हृदय-भावना-हार।
 श्वेताम्बुज आसन, दिव्य शुभासन, महा-मोह-तम हंता।
 माँ हंस-विहारिणि, हृद-तम हारिणि, फटिक माल कर ग्रन्था।।
                                                       अर्पित अक्षर पुष्प यह, स्वीकृति ही उपहार॥
                                                       भवबन्धन कट जाय, पर नेह-बन्ध हो गाढ़।
 निर्मल शुभ वचना, शुभ सुवसना, विनय करूँ कर जोरी।
                                                       हो वीणा-सुर-तार में, बन्धन-हृदय प्रगाढ़॥
 हो अम्ब विमल मित, हो माँ शुभ गित, हों पावन संसारी॥
```

मानसमें माँ सरस्वतीकी महिमा बसन्त-पंचमीपर विशेष-( श्रीराजकुमारजी अरोड़ा ) माँ सरस्वती (शारदा) वाणीकी देवी हैं, वैदिक (३) अयोध्यामें रामजीका राजतिलक होना है, एवं पौराणिक वाङ्मयमें उनकी महती महिमाका सभी तरहकी तैयारी हो चुकी है, देवताओंने माता समारोहपूर्वक वर्णन हुआ है। अनेक विद्वानोंका मत है सरस्वतीका आवाहन किया और सरस्वतीजी महारानी कि सर्वप्रथम सरस्वती देवीका आवाहन करना चाहिये कैकेयीकी मन्थरा नामक दासीकी जीभपर विराजमान और उसके पश्चात् गणेशजीका। यह बात सत्य इसलिये होकर उसी रातको ही सारी योजनाको मटियामेट लगती है कि गणेशजीको वाणीद्वारा ही पुकारा जायगा। कर गयीं— गणेशजीकी पूजा, अर्चना, वन्दना, स्तृति करनेके लिये नामु मंथरा मंदमित चेरी कैकई केरि। भी तो वाणीकी ही आवश्यकता है। वाणीके बिना अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मित फेरि॥ गणेशजीकी स्तुति सम्भव नहीं है। और न ही किसी (रा०च०मा० २।१२) अन्य देवी-देवताकी स्तुति सम्भव है, हिन्दू जनमानसके (४) जिस समय रामजीको वनवास हुआ। भरतजी कण्ठहार श्रीरामचरितमानसमें तो गोस्वामीजीने पदे-पदे निनहाल गये हुए थे। गुरु वसिष्ठजीके बुलानेपर जब वे माँ शारदाका पावन-स्मरण किया है। उनमेंसे कतिपय वापस आये तो महाराज दशरथका प्राणान्त हो चुका स्थलोंका यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है-था। कारण रामजीका बिछुड़ना और मूलकारण भरतकी (१) श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने पहले सरस्वती-माताद्वारा रामका वनवास तथा भरतका राजतिलक इन दोनों वरदानोंका माँगना और महाराज दशरथका प्राणोंसे जीकी तत्पश्चात् गणेशजीकी वन्दना की है। इस सन्दर्भमें श्रीरामचरितमानसके पहले काण्ड (बालकाण्ड)-अधिक वचनका महत्त्व प्रमाणित करना। भरतजी तो का सर्वप्रथम श्लोक द्रष्टव्य है— रामजीके प्राण हैं और रामजी भरतजीके प्राण। उन्होंने पिताकी मृत्यु और रामवनगमनमें स्वयंको कारण मानते वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि। हुए सारी सेना, गुरुजनों, माताओं, परिजनों, पुरजनोंसहित मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

[भाग ९२

मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥ हुए सारी सेना, गुरुजनों, माताओं, परिजनों, पुरजनोंसिहत अर्थात् अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मंगलोंकी रामके राजितलककी पूरी तैयारीके साथ वनको प्रस्थान करनेवाली सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ। किया। यह देख देवताओंने पुन: सरस्वतीका आवाहन (२) रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण तीनों करके भरतकी बुद्धिको फेरना चाहा, परंतु इस बार भाइयोंके उग्र तपसे प्रसन्न होकर जब ब्रह्माजी वरदान देवताओंकी विनतीको माँ शारदाने ठुकरा दिया। वे

देनेके लिये कुम्भकर्णके सामने आते हैं तो उसकी

विशाल काया देखकर असमंजसमें पड़ जाते हैं, सोचते देवताओंने सरस्वतीजीका स्मरणकर उनकी सराहना हैं अगर यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो संसार ही (स्तुति) की और कहा—हे देवि! देवता आपके उजड़ जायगा। शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिये। अपनी माया रचकर ऐसा विचारकर ब्रह्माजीने सरस्वतीको प्रेरणा करके भरतजीकी बुद्धिको फेर दीजिये और छलकी छायाकर

भरतकी भक्तिके आगे पराजित हो गयीं।

उसकी बुद्धि फेर दी, जिससे उसने छ: महीनेकी नींद देवताओंके कुलकी रक्षा कीजिये। देवताओंकी विनती माँगी। सुनकर और देवताओंको स्वार्थके वश होनेसे मूर्ख सारद प्रेरि तासु मित फेरी। मागेसि नींद मास षट केरी॥ जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं—मुझसे कह रहे हो

द प्रेरि तासु मित फेरी। मागेसि नींद मास षट केरी॥ जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं—मुझसे कह रहे हो (रा॰च॰मा॰ २।२१७।४) कि भरतकी मित पलट दो! हजार नेत्रोंसे भी तुमको

मानसमें माँ सरस्वतीकी महिमा संख्या २ ] कोई और दण्ड सोचा जाय। अब सरस्वतीजी रावणकी सुमेरु नहीं सूझ पड़ता! ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी माया बड़ी प्रबल है, जिह्वापर विराजमान होती हैं और रावण कहता है किंतु वह भी भरतजीकी बुद्धिकी ओर ताक नहीं सकती। कि बन्दरको अंग-भंगकर लौटा दिया जाय। उस बुद्धिको तुम मुझसे कह रहे हो कि भोली कर दो कपि कें ममता पूँछ पर सबिह कहउँ समुझाइ। (भुलावेमें डाल दो)! अरे! चाँदनी कहीं प्रचण्ड तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥ किरणवाले सूर्यको चुरा सकती है? (रा०च०मा० ५।२४) भरतजीके हृदयमें सीतारामजीका निवास है, जहाँ जब बिना पूँछका यह बन्दर वहाँ जायगा, तब यह मूर्ख अपने मालिकको साथ ले आयेगा। जिनकी इसने सूर्यका प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है ? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको चली गर्यो। देवता ऐसे बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो व्याकुल हुए, जैसे रात्रिमें चकवा व्याकुल होता है। देखूँ! यह वचन सुनते ही हनुमान्जी मनमें मुसकराये सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही।देबि देव सरनागत पाही॥ और मन-ही-मन बोले कि मैं जान गया, सरस्वतीजी इसे फेरि भरत मित करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया।। ऐसी बृद्धि देनेमें सहायक हुई हैं— विबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥ मो सन कहहु भरत मित फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥ बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥ बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउन भरत मित सकइ निहारी।। (रा०च०मा० ५।२४।२) पुँछमें तो आग क्या लगनी थी। पूरी लंका ही सो मित मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी।। जलकर खाक हो गयी। केवल एक विभीषणका घर ही भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥ नहीं जला। रावण तथा सभी लंकावासी उस आगसे अस किह सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका।। अत्यन्त भयभीत हो गये। यह सब भगवती शारदाकी ही (रा०च०मा० २।२९५।१-८) (५) जब हनुमान्जीने अशोकवाटिकाका विध्वंस महिमा थी। करते हुए रावणपुत्र अक्षयकुमार तथा अन्य बड़े-बड़े भगवती सरस्वतीकी महिमा अगाध है, इस लघु योद्धाओंको मार दिया तो रावणने अत्यन्त बलशाली आलेखमें इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। अपने बेटे मेघनादको यह आदेश दे करके भेजा कि गोस्वामीजी तो कहते हैं— बन्दरको मारना नहीं, बाँधकर ले आना, देखें, वह पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥ बन्दर कहाँका है! मेघनाद तथा अन्य योद्धाओंके मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥ अर्थात् अब मैं शारदा (सरस्वतीजी) और देवनदी साथ हनुमान्जीका युद्ध हुआ तथा प्राणपर संकट आते देख मेघनादने हनुमान्जीपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा, (गंगाजी)-की वन्दना करता हूँ। दोनों पवित्र और ब्रह्माजीकी महान् महिमाका मान रखते हुए हनुमान्जी मनोहर चरित्रवाली हैं। एक (गंगाजी) स्नान करने और जल पीनेसे पापोंको हरती हैं और दूसरी [काव्यरूपी गिरे तथा मूर्च्छित हो गये, तब मेघनाद हनुमान्जीको शारदा हरियश कथनादिसे] अविवेक (अज्ञान) हर नागपाशमें बाँधकर ले गया। हनुमान्जीको दण्ड देनेके लिये रावणने कहा कि इस मूर्ख बन्दरके प्राण ही लेती हैं। शीघ्र क्यों न हर लिये जायँ। सुनते ही राक्षस मारने भगवती शारदा तो साक्षात् ब्रह्मविद्या हैं, उन्हींकी दौड़े तो विभीषणजीने कहा कि ये हनुमान्जी तो कृपासे सन्त-समाज ब्रह्मविचारका प्रचार करता रहता रामके दूत हैं, अत: इन्हें मारना नीतिके विरुद्ध है। है—'सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥'

िभाग ९२ आध्यात्मिक कहानी— उसने क्या कहा? ( पं० श्रीईश्वरचन्द्रजी तिवारी ) आज मैंने उसको गाँवके बाहर पाकड़के वृक्षके यही है परमात्माको पानेका अति सुगम सर्वश्रेष्ठ नीचे पड़े देखा। गुदड़ी उसके सिरके नीचे थी और फटी साधन। पगनियाँ बगलमें। मेरी जिज्ञासा स्फुरित हुई। केवल जब तुम प्रार्थना करते हो तो भूल जाते हो कि क्या करें। परमात्मासे माँगने लगते हो—और माँगते भी हो कुतूहलवश ही मैं उसकी ओर चल पड़ा। यों तो वह किसीको अपने पास आते देखकर उठकर चल देता था; वहाँ वह वस्तु, जिसे माँगते तुम्हें शरम आनी चाहिये। जरा सोचो तो, यदि तुम किसी चक्रवर्ती राजाके दरबारमें परंतु आज वह शान्त था। मैं उसके समीप पहुँच गया। वह कोढी थोडे-थोडे समयके अन्तरपर अपना कभी पहुँचो और उससे एक सडी वस्तु—कुडे-सारा शरीर खुजाने लगता; उसके शरीरकी तीव्र दुर्गन्ध करकटकी याचना करो तो यह उसका उपहास करना बरबस ही नासिकामें प्रवेश कर रही थी। मेरी आँखें ही तो होगा? वह तो महान् शक्तिशाली है, तुम्हें उसकी गुदड़ीपरके चिल्लुओंको देखनेमें व्यस्त थीं। पलभरमें निहाल कर सकता है। मेरे वहाँ जानेसे उसके सहज कार्यक्रममें तनिक भी पर जब तुम सबसे बड़े दरबार-परमेश्वरके दरबारमें प्रवेश करते हो, तो वहाँ उसके राज्यकी हीन बाधा नहीं आयी। वह एक ईंटके टुकड़ेसे खेल रहा था। केवल शरीरपर भिनभिनानेवाली मिक्खयाँ बीच-बीचमें वस्तुएँ कंचन-वैभव आदि विषय ही क्यों माँगते हो? उसके शरीरको एकबारगी ही हिला देती थीं। क्या तुम 'उसकी' दृष्टिमें इतने हीन हो? अथवा क्या मैंने उसके मुखपर एक अनोखी शान्ति और आभा तुम्हारी अत्यधिक दीनता और सन्तोष तुम्हें उसका पुत्र देखी। यद्यपि उसके कपड़ोंकी बूसे नाक फटी जाती थी; माननेका अधिकारी नहीं समझते? परंतु फिर भी न मालूम किसने मुझे बैठ जानेको प्रेरित परमेश्वरसे माँगो मत कुछ भी! किया और मैं बैठ गया। तुम्हारी कमीज फटनेके पूर्व और जूते जीर्ण होनेके मैं उसका परिचय पूछनेवाला ही था कि वह हँसा पहले ही पिताजी तुम्हें ये वस्तुएँ ला देंगे। वे कभी नहीं और उसने मेरी ओर दृष्टि फेरी। वैसे तो मैं सभी फकीरों देख सकते कि उनका लाड़ला आज्ञाकारी पुत्र कभी नंगा और भिखमंगोंके पीछे कुत्ते लगा दिया करता था, इसमें अथवा भूखा रहे। तुम्हें जन्म देनेवाला तुम्हारी मुझे मजा भी आता था; परंतु आज मैं उस कोढ़ीके आवश्यकताओंको उनके उत्पन्न होनेके पूर्व ही जानता सामने करबद्ध बैठा था। मुखसे बोलनेकी चेष्टा करनेपर है, तुम्हें बतलानेकी आवश्यकता नहीं। भी कोई शब्द न निकला। मेरा मस्तक कुछ झुक गया— अपनी बिखरी शक्ति बटोर लो—फिर तो परमेश्वर आँखोंकी पलकें नीची हो गयीं। तुम्हें अपने दरबारका मन्त्री चुन लेंगे। माँगो मत। वह उसी प्रकार पडा रहा। मैं भी आरामसे बैठ शीशमकी लकड़ीको तुम कभी चूल्हेमें न पाओगे। गया। 'देखो' वह बोला, 'परमात्मा कितना दयालु है ?' इस मायाके संसारमें कौन है वह, जो तुम्हें उच्च और ईंटके ढेलेको चकरीकी भाँति घुमाने लगा। पद प्रदान करेगा? मैं सून रहा था-तुम्हें कोई खोदकर धनराशि देनेवाला नहीं है। 'लो उसने फिर कहा—'उससे जो कोई कुछ चाहता बाबा! यह गठरी ले जाओ' ऐसा कोई न कहेगा। यहाँ सभी अपने-अपने कार्योंमें व्यस्त हैं। तुम्हें स्वयं यह है, उसे वह सब कुछ दे डालता है।' वह मुझे समझाता गया—'चाहना—अर्थात् प्रार्थना खुदाई अपने-आप करनी होगी। करना, इसका अर्थ है—निवेदन—आत्मनिवेदन। सब चिल्लाओ मत; शोर न करो। इससे कुछ न होगा। प्रकीरक्षिपांडसक् Piscord Server https://dsc.gg/dharma، र्लिटिम खेटिन सुकन्नी है लिनसे vipash/निही

दुर्जनसे दूर रहें संख्या २ ] उसने फिर मुझसे परंतु बड़े मधुर भावसे पूछा, निकल सकता। 'क्यों भाई?' ध्यान देनेकी बात है-यदि सुबह-शाम ग्रामोफोनमें चाभी दे दी जाय और रेकार्ड बजता रहे, 'हे प्रभृ! हे मैंने जवाब दिया—'करना तो चाहता हूँ; परंतु भगवन्! हे दीनदयालो! सर्वजगरक्षक! मेरी विनती सुनो। शरम लगती है कि कहीं कोई देख लेगा तो क्या कहेगा। मैं तुम्हें कितनी देरसे पुकार रहा हूँ, तुम सुनते नहीं, क्या 'अभीसे बढापा आ गया' कहकर लोग मुझे परेशान कभी न सुनोगे? तुमने लाखों तारे हैं। हमें भी तार करेंगे।' मेरी बात सुनकर साधुको बडी हँसी आयी। दो...आदि-आदि' तो इससे क्या होगा? ग्रामोफोन स्वयं तीन-चार मिनटतक वह लगातार हँसता ही रहा। फिर अपना अथवा संसारका कौन-सा कल्याण कर सकेगा? बोला—'यह तो ऐसी शंका है जैसी कि एक सती यह उसकी आत्मा बोलती है अथवा शरीर? नारीको हो सकती है कि....' तुम भूल जाते हो, गानेकी नकलमात्र न बनो। मैंने बात काटकर पूछा—'कैसी?' 'कि उसे कोई अपने पतिके पास देख लेगा तो क्या प्रार्थना करो-द्रवित हृदयसे। स्वयं परमात्मामें घुस जाओ, वहाँसे खोद लाओ कहेगा? दोषी मन सदा शंकाशील रहता है।' वह फिर जितना दामनमें उठा सको। हाथ फैलानेकी क्या हँस पडा और उसके शरीरकी मिक्खयाँ हवामें मँडराने आवश्यकता ? जितना घुसोगे, उतना ही श्याम-रंगमें रँग लगीं। 'मेरे नवयुवक!' उसने कहा—'तुम्हें बतलाया गया जाओगे। कुएँमें पानी भरने जाओ तो अध-बीचहीसे गगरी है कि तुम क्लर्क होगे, रुपये कमाओगे और घरका पालन न खींच लो। फिर एक प्रश्न यह और है-गगरी भरनी करोगे। यदि तुम भूल जाते कि तुम केवल रुपया पैदा है या स्वच्छ जल चाहिये? स्वच्छ जलके लिये करनेकी मशीन हो और यह भी ध्यानमें रखते कि अन्य धैर्यपूर्वक कुएँमें रस्सी लगाकर गगरी खींचनी होगी। रुपया पैदा करनेवाली मशीनोंका कुछ भी प्रभाव तुमपर न पड़ेगा तो तुम एक बड़ी निधिके मालिक हो सकते थे और गगरी तो बरसाती गड्ढेसे भी भरी जा सकती है। प्रार्थना आलिसयोंकी पुकार नहीं है। तुम्हें यह शंका भी न होती; परंतु खैर। जाओ, अब भी वह तो भगवत्-परायण भक्तोंका स्वभाव है। कोशिश करो। अभी कुछ नहीं बिगडा है। इतना कहकर उसने मेरी ओर मुख फेरा और प्रश्न मैंने उसे प्रणाम किया और अपने मकानकी ओर किया—'क्या तुम प्रतिदिन प्रार्थना करते हो?' चला आया। बादमें उस साधुको खोजनेका प्रयत्न किया; परंतु सब व्यर्थ! मैंने लज्जाग्रस्त हो कहा—'नहीं।' दुर्जनसे दूर रहें दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्। मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम्॥ दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः। मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते॥ दुष्ट व्यक्ति मीठी बातें करनेपर भी विश्वास करनेयोग्य नहीं होता, क्योंकि उसकी जीभपर शहदके ऐसा मिठास होता है, परंतु हृदयमें हलाहल विष भरा रहता है। दुष्ट व्यक्ति विद्यासे भूषित होनेपर भी त्यागनेयोग्य है; जिस सर्पके मस्तकपर मणि होती है, वह क्या भयंकर नहीं होता? साँप निटुर होता है और दुष्ट भी निटुर होता है; तथापि दुष्ट पुरुष साँपकी अपेक्षा अधिक निटुर होता है, क्योंकि साँप तो मन्त्र और औषधसे वशमें आ सकता है, किंतु दुष्टका कैसे निवारण किया जाय? [ चाणक्यनीति ]

महाशिवरात्रिव्रतकी कथा और माहात्म्य ( आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम०ए०, एल०टी०, साहित्यरल, धर्मरल )

िभाग ९२

चार प्रहरकी पूजाका विधान

शिवरात्रिका अर्थ वह रात्रि है, जिसका शिवतत्त्वके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् शिवजीकी अतिप्रिय चार प्रहरमें चार बार पूजाका विधान है। इसमें

रात्रिको 'शिवरात्रि' कहा जाता है। शिवार्चन और शिवजीको पंचामृतसे स्नान कराकर चन्दन, पुष्प, अक्षत,

जागरण ही इस व्रतकी विशेषता है। इसमें रात्रिभर वस्त्रादिसे शृंगारकर आरती करनी चाहिये। रात्रिभर

जागरण एवं शिवाभिषेकका विधान है। जागरण तथा पंचाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। रुद्राभिषेक, रुद्राष्टाध्यायी तथा रुद्रीपाठका भी विधान है। श्रीपार्वतीजीकी जिज्ञासापर भगवान् शिवजीने बताया

कि फालान कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती प्रथम आख्यान

है। जो उस दिन उपवास करता है, वह मुझे प्रसन्न कर पद्मकल्पके प्रारम्भमें भगवान् ब्रह्मा जब अण्डज,

लेता है। मैं अभिषेक, वस्त्र, धूप, अर्चन तथा पुष्पादि पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज एवं देवताओं आदिकी सुष्टि

समर्पणसे उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना कि व्रतोपवाससे— कर चुके, एक दिन स्वेच्छासे घूमते हुए क्षीरसागर

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी। पहुँचे। उन्होंने देखा भगवान् नारायण शुभ्र, श्वेत

तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका॥ सहस्रफणमौलि शेषकी शय्यापर शान्त अधलेटे हैं।

भूदेवी, श्रीदेवी, श्रीमहालक्ष्मीजी शेषशायीके चरणोंको तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्।

न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया। अपने अंकमें लिये चरण-सेवा कर रही हैं। गरुड, नन्द,

तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥ सुनन्द आदि पार्षद तथा गन्धर्व, किन्नर आदि विनम्रतापूर्वक

ईशानसंहितामें बताया गया है कि फाल्गुन कृष्ण हाथ जोडे खडे हैं। यह देख ब्रह्माजीको अति आश्चर्य चतुर्दशीकी रात्रिको आदिदेव भगवान् श्रीशिव करोड़ों हुआ। ब्रह्माजीको गर्व हो गया था कि मैं एकमात्र

सृष्टिका मूल कारण हूँ और मैं ही सबका स्वामी, सूर्योंके समान प्रभावाले लिंगरूपमें प्रकट हुए। नियन्ता तथा पितामह हूँ, फिर यह वैभवमण्डित कौन फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।

यहाँ निश्चिन्त सोया है। शिवलिङ्गतयोद्भृतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥

शिवरात्रिव्रतकी वैज्ञानिकता तथा श्रीनारायणको अविचल शयन करते हुए देखकर

आध्यात्मिकता उन्हें क्रोध आ गया। ब्रह्माजीने समीप जाकर कहा-

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तुम कौन हो? उठो! देखो, मैं तुम्हारा स्वामी, पिता

तिथिमें चन्द्रमा सूर्यके समीप होता है। अत: वही समय आया हूँ। शेषशायीने केवल दृष्टि उठायी और मन्द

जीवनरूपी चन्द्रमाका शिवरूपी सूर्यके साथ योग— मुसकानसे बोले—वत्स! तुम्हारा मंगल हो। आओ, इस

मिलन होता है। अतः इस चतुर्दशीको शिवपूजा करनेसे आसनपर बैठो। ब्रह्माजीको और अधिक क्रोध हो आया,

जीवको अभीष्टतम पदार्थकी प्राप्ति होती है। यही झल्लाकर बोले—मैं तुम्हारा रक्षक, जगत्का पितामह शिवरात्रिका रहस्य है। हूँ। तुमको मेरा सम्मान करना चाहिये। इसपर भगवान्

महाशिवरात्रिका पर्व परमात्मा शिवके दिव्य नारायणने कहा-जगत् मुझमें स्थित है, फिर तुम उसे

अवतरणका मंगलसूचक है। उनके निराकारसे साकाररूपमें अपना क्यों कहते हो ? तुम मेरे नाभि-कमलसे पैदा हुए

अवतरणकी रात्रि ही महाशिवरात्रि कहलाती है। वे हमें हो, अतः मेरे पुत्र हो। मैं स्रष्टा, मैं स्वामी—यह विवाद

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सरादि विकारोंसे मुक्त करके दोनोंमें होने लगा। श्रीब्रह्माजीने 'पाशुपत' और श्रीविष्णुजीने

परम सुख, शान्ति, ऐश्वर्यादि प्रदान करते हैं। 'माहेश्वर' अस्त्र उठा लिया। दिशाएँ अस्त्रोंके तेजसे संख्या २ ] महाशिवरात्रिव्रतकी कथा और माहात्म्य ३३ <u>\*</u> जलने लगीं, सृष्टिमें प्रलयकी आशंका हो गयी थी। आयेगा—उसीको मारकर घर ले जाऊँगा। वह व्याध

शिविलङ्गतयोद्भृतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥ माहेश्वर, पाशुपत दोनों अस्त्र शान्त होकर उसी ज्योतिर्लिंगमें लीन हो गये। ब्रह्मा और विष्णु दोनोंने उस

देवगण भागते हुए कैलासपर्वतपर भगवान् विश्वनाथके

पास पहुँचे। अन्तर्यामी भगवान् शिवजी सब समझ गये।

देवताओंद्वारा स्तुति करनेपर वे बोले—'मैं ब्रह्मा-विष्णुके युद्धको जानता हूँ। मैं उसे शान्त करूँगा। ऐसा कहकर

भगवान् शंकर सहसा दोनोंके मध्यमें अनादि, अनन्त-

ज्योतिर्मय स्तम्भके रूपमें प्रकट हुए।'

लिंगके आदि-अन्तका पता लगानेका प्रयास किया, पर निष्फल रहे। यह लिंग निष्कल ब्रह्म, निराकार ब्रह्मका प्रतीक है। श्रीविष्णु और श्रीब्रह्माजीने उस लिंग (स्तम्भ)-की पूजा-अर्चना की। यह लिंग फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको प्रकट हुआ तभीसे आजतक लिंगपूजा निरन्तर चली आ

रही है। श्रीविष्णु और श्रीब्रह्माजीने कहा—महाराज! जब हम दोनों लिंगके आदि-अन्तका पता न लगा सके तो आगे मानव आपकी पूजा कैसे करेगा? इसपर कृपालु भगवान् शिव द्वादशज्योतिर्लिंगमें विभक्त हो गये। महाशिवरात्रिका यही रहस्य है। (ईशानसंहिता)

#### **द्वितीय आख्यान** वाराणसीके वनमें एक भील रहता था। उसका नाम

गुरुद्रुह था। उसका कुटुम्ब बड़ा था। वह बलवान् और क्रूर था। अत: प्रतिदिन वनमें जाकर मृगोंको मारता और वहीं रहकर नाना प्रकारकी चोरियाँ करता था। शुभकारक महाशिवरात्रिके दिन उस भीलके माता-पिता, पत्नी और बच्चोंने भूखसे पीड़ित होकर भोजनकी याचना की। वह तुरंत धनुष लेकर मृगोंके शिकारके लिये सारे वनमें घूमने

लगा। दैवयोगसे उस दिन उसे कुछ भी शिकार नहीं मिला और सूर्य अस्त हो गया। वह सोचने लगा—अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? माता-पिता, पत्नी, बच्चोंकी क्या

दशा होगी? कुछ लेकर ही घर जाना चाहिये, यह

सोचकर वह व्याध एक जलाशयके समीप पहुँचा कि

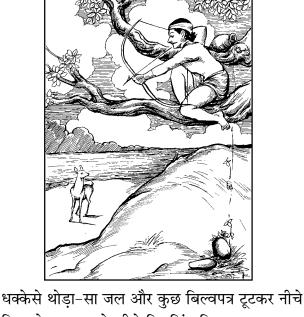
रात्रिमें कोई-न-कोई जीव यहाँ पानी पीने अवश्य

रात्रिके प्रथम प्रहरमें एक प्यासी हरिणी वहाँ आयी। उसको देखकर व्याधको अति हर्ष हुआ, तुरंत ही उसका वध करनेके लिये उसने अपने धनुषपर एक बाणका संधान किया। ऐसा करते हुए उसके हाथके

किनारेपर स्थित बिल्ववृक्षपर चढ़ गया। पीनेके लिये

कमरेमें बँधी तुम्बीमें जल भरकर बैठ गया। भूख-प्याससे

व्याकुल वह शिकारकी चिन्तामें बैठा रहा।



गिर पड़े। उस वृक्षके नीचे शिवलिंग विराजमान था। वह जल और बिल्वपत्र शिवलिंगपर गिर पड़ा। उस जल और बिल्वपत्रसे प्रथम प्रहरकी शिवपूजा सम्पन्न हो गयी। खड़खड़ाहटकी ध्वनिसे हरिणीने भयसे ऊपरकी

बताओ। व्याधने कहा—मेरे कुटुम्बके लोग भूखे हैं, अत: तुमको मारकर उनकी भूख मिटाऊँगा। मृगी बोली—भील!मेरे मांससे तुमको, तुम्हारे कुटुम्बको सुख

ओर देखा। व्याधको देखते ही मृत्युभयसे व्याकुल हो

वह बोली—व्याध! तुम क्या चाहते हो, सच-सच

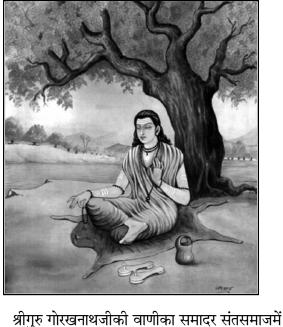
होगा, इस अनर्थकारी शरीरके लिये इससे अधिक महान् पुण्यका कार्य भला और क्या हो सकता है! परंतु इस समय मेरे सब बच्चे आश्रममें मेरी बाट जोह रहे होंगे।

मैं उन्हें अपनी बहनको अथवा स्वामीको सौंपकर लौट

भाग ९२ अनजानेमें स्वत: ही हो गयी। उस दिन महाशिवरात्रि आऊँगी। मृगीके शपथ खानेपर बड़ी मुश्किलसे व्याधने थी, जिसके प्रभावसे व्याधके सम्पूर्ण पाप तत्काल उसे छोड दिया। द्वितीय प्रहरमें उस हरिणीकी बहन उसीकी राह भस्म हो गये। देखती हुई, उसे ढूँढ़ती हुई जल पीने वहाँ आ गयी। इतनेमें ही मृग और दोनों मृगियाँ बोल उठे-व्याधने उसे देखकर बाणको तरकशसे खींचा। ऐसा व्याधशिरोमणे! शीघ्र कृपाकर हमारे शरीरोंको सार्थक करते समय पुन: पहलेकी भाँति शिवलिंगपर जल-करो और अपने कुटुम्ब—बच्चोंको तृप्त करो। व्याधको बिल्वपत्र गिर गये। इस प्रकार दूसरे प्रहरकी पूजा बड़ा विस्मय हुआ। ये मृग ज्ञानहीन पशु होनेपर भी धन्य हैं, परोपकारी हैं और प्रतिज्ञापालक हैं, मैं सम्पन्न हो गयी। मृगीने पूछा-व्याध! यह क्या करते हो? व्याधने पूर्ववत् उत्तर दिया—मैं अपने भूखे मनुष्य होकर भी जीवनभर हिंसा, हत्या और पापकर कुटुम्बको तृप्त करनेके लिये तुझे मारूँगा। मृगीने अपने कुटुम्बका पालन करता रहा। मैंने जीव-कहा-मेरे छोटे-छोटे बच्चे घरमें हैं। अत: मैं उन्हें हत्या करके उदरपूर्ति की, अत: मेरे जीवनको धिक्कार है! धिक्कार है!! व्याधने बाणको रोक लिया और अपने स्वामीको सौंपकर तुम्हारे पास लौट आऊँगी। में वचन देती हूँ। व्याधने उसे भी छोड दिया। कहा—श्रेष्ठ मृगो! तुम सब जाओ। तुम्हारा जीवन व्याधका दुसरा प्रहर भी जागते-जागते बीत धन्य है! गया। इतनेमें ही एक बड़ा ह्रष्ट-पुष्ट हिरण मृगीको व्याधके ऐसा कहनेपर तुरंत भगवान् शंकर लिंगसे प्रकट हो गये और उसके शरीरको स्पर्शकर प्रेमसे ढूँढ्ता हुआ वहाँ आया। व्याधके बाण चढ़ानेपर पुनः कुछ जल और बिल्वपत्र लिंगपर गिरे। अब तीसरे कहा—वर माँगो। 'मैंने सब कुछ पा लिया'—यह प्रहरकी पूजा भी हो गयी। मृगने आवाजसे चौंककर कहते हुए व्याध उनके चरणोंमें गिर पड़ा। श्रीशिवजीने व्याधकी ओर देखा और पूछा-क्या करते हो? व्याधने प्रसन्न होकर उसका 'गुह' नाम रख दिया और कहा—तुम्हारा वध करूँगा, हरिणने कहा—मेरे बच्चे वरदान दिया कि भगवान राम एक दिन अवश्य ही भूखे हैं। मैं बच्चोंको उनकी माताको सौंपकर तथा तुम्हारे घर पधारेंगे और तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे। उनको धैर्य बँधाकर शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा। व्याध तुम मोक्ष प्राप्त करोगे। वही व्याध शृंगवेरपुरमें निषादराज बोला-जो-जो यहाँ आये, वे सब तुम्हारी ही तरह 'गुह' बना, जिसने भगवान् रामका आतिथ्य किया। बातें तथा प्रतिज्ञा कर चले गये, परंतु अभीतक नहीं वे सब मृग भगवान् शंकरका दर्शनकर मृगयोनिसे लौटे। शपथ खानेपर उसने हिरणको भी छोड़ दिया। मुक्त हो गये। शापमुक्त हो विमानसे दिव्य धामको मृग-मृगी सब अपने स्थानपर मिले। तीनों प्रतिज्ञाबद्ध चले गये। तबसे अर्बुद पर्वतपर भगवान् शिव थे, अतः तीनों जानेके लिये हठ करने लगे। अतः व्याधेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। दर्शन-पूजन करनेपर उन्होंने बच्चोंको अपने पडोसियोंको सौंप दिया और वे तत्काल मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। तीनों चल दिये। उन सबको एक साथ आया देख यह महाशिवरात्रिव्रत 'व्रतराज' के नामसे विख्यात व्याधको अति हर्ष हुआ। उसने तरकशसे बाण खींचा, है। यह शिवरात्रि यमराजके शासनको मिटानेवाली है जिससे पुन: जल-बिल्वपत्र शिवलिंगपर गिर पड़े। इस और शिवलोकको देनेवाली है। शास्त्रोक्त विधिसे जो प्रकार चौथे प्रहरकी पूजा भी सम्पन्न हो गयी। इसका जागरणसहित उपवास करते हैं, उन्हें मोक्षकी रात्रिभर शिकारकी चिन्तामें व्याध निर्जल, प्राप्ति होती है। शिवरात्रिके समान पाप और भय भोजनरहित जागरण करता रहा। शिवजीका रंचमात्र मिटानेवाला दूसरा व्रत नहीं है। इसके करनेमात्रसे भी Hifratorism चीं is दिख्य । S हर एके r निस्कुं s महाइन्हें g सुरुष ha समाव पापों स्मान छो। जमान दि एक क्रिक्य स्मान dash/Sha

श्रीगुरु गोरखनाथजीका जीवन-दर्शन

#### श्रीगुरु गोरखनाथजीका जीवन-दर्शन ( साहित्याचार्य रावत श्रीचतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी )



संख्या २ ]

अभी जन-साधारणपर उतना नहीं पड़ा, जितना कि भक्तशिरोमणि तुलसीदासजीकी रामायणका। श्रीगुरु गोरखनाथकी वाणीने प्रत्येक वस्तुका स्पर्श किया है और जातिविशेषको भी उसके कर्मानुसार ही अच्छा उपदेश दिया है। अपनी वाणीमें योगियोंके लिये 'अवधूत' शब्दका प्रयोग किया है। अत: अवधूतोंको

सम्बोधन करते हुए उनको सुधारनेकी शिक्षा दी है, जैसा

कि नीचेके अवतरणोंसे प्रकट होता है, जिनमें शिक्षा दी

गयी है कि सब व्यवहार युक्तिपूर्वक और सोच-

अच्छा होता पाया गया है, यद्यपि इनकी वाणीका प्रभाव

समझकर करने चाहिये-वाणी

हबिक न बोलिबा ठबिक न चलिबा धीरै धरिबा पाँवं।

गरब न करिबा सहजैं रहिबा भणत गोरष रावं॥ ते थीरं झल झलंति ( भरीया )

सिधे सिध मिल्या रे अवधू बोल्या अरु लाधा॥

नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ़ करि राषहु चीया।

काम क्रोध अहंकार निबारौ तौ सबै दिसंतर कीया॥ एकदम अचानक जल्दीसे नहीं बोलना चाहिये।

पाँव फटाफट करके यानी पटकते हुए नहीं चलना चाहिये। धीरे-धीरे पैर रखना चाहिये। घमंड नहीं

करना चाहिये। सदैव सहज स्वाभाविक स्थितिमें रहना चाहिये, यह गोरखनाथका उपदेश है। जो भरे-पूरे हैं और ज्ञानयुक्त हैं, वे ही स्थिर और गम्भीर होते हैं। ऐसे पूरे योगी अपने ज्ञानका प्रदर्शन नहीं करते-

प्रकार अधूरे योगी अपना प्रदर्शन करते-फिरते हैं और अपने चंचल स्वभावके कारण ऐसे योगी यत्र-तत्र ज्ञानका दिखावा करते हैं। सिद्धि-प्राप्त पुरुष ऐसे छिछोड़ोंसे नहीं बोला करते, अत: हे अवधूत!

सिद्धको पाकर ही सिद्ध बोलते हैं। योगीजनोंका कोई घर-बार नहीं होता, सर्वत्र और सारी दुनियाँ ही उनका घर है, इस कारण वे

सब जगह घूमते रहते हैं। यही उनकी विरक्तताका द्योतक है। इनमेंसे कुछ ऐसे भी योगी हैं, जिनको देशाटन करनेकी आदत-सी पड गयी है। ऐसोंके

भ्रमण करना स्वयं देशान्तरके उद्देश्य अथवा लक्ष्यसे आवश्यक नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब चित्त स्थिर है और काम-क्रोध-लोभ-मोह तथा अहंकारका निवारण हो गया है तो फिर सभी देशान्तर हो गये। कारण यह है कि निवृत्तिके ही लिये देशान्तर किया

लिये श्रीगोरखनाथका उपदेश है कि देश-देशान्तरमें

फिरते। जिस प्रकार ओछे घट छलकते हैं, उसी

जाता है, जो चित्तकी स्थिरतासे निष्पन्न हो जाता है। यहाँ 'चीया' शब्दका अर्थ है चित्त। योगीको तो चाहिये-

'थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ तिस घटि पवनां रहै समाइ।' कम बोलना चाहिये और थोड़ा खाना चाहिये; यह

नहीं कि भोजनको अनाप-शनाप खाया जाय। जो मितभाषी तथा अल्पाहारी है, उसके शरीरमें पवन समाया

रहता है।

अवधू अहार तौड़ो निद्रा मोड़ो कबहु न होइगा रोगी। छठै छमासै काया पलटिबा ज्युं को को बिरला योगी॥

भाग ९२ उपज हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि गोरख हरेक कला ते संजम रहिबा भूत कला आहारं। शरीरमें अपना उपदेश कर रहे हैं। लाभ वे ही उठा मन पवना लै उनमनि धरिबा ते जोगी तत सारं॥ सकते हैं, जिन्होंने कायाको सिद्ध कर लिया है। अवधू निद्रा के घरि व्याल जंजालं अहार के घरि चोरं। हे अवधृत! शरीरको वश करनेके बाहरी उपायोंसे मैथुन के घरि जुरा गरासै अरध उरध लै जोरं॥ योग-सिद्धि नहीं होती, कारण कि खडाऊँ पहननेवाला हे अवधूत! आहारको तोड़ो यानी कम खाओ, मिताहारी बनो और सोओ भी नहीं और छठे-छमासे चलनेमें फिसल जाता है, लोहेकी साँकलोंसे जकडनेसे शरीर नष्ट हो जाता है। जो नागा है, मौनी है तथा कभी-कभी काया-कल्प भी किया करो। इस क्रियासे कभी रोगी नहीं हो पाओगे, ऐसा तो बिरले ही योगी कर दुधाधारी है, इतनोंको योगलाभ नहीं होता। जैसा पाते हैं। कहा है-आहार उतना ही करना चाहिये, जिससे शरीरकी नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया। रक्षा हो सके, जिससे अपने देवत्वकी रक्षा हो, इस इसका कारण यह बताया है कि— संयमसे रहना चाहिये। जो योगी मन-पवनको संयुक्तकर दूधाधारी पर घरि चित, नागा लकड़ी चाहै नित। उन्मनावस्थामें लीन कर देते हैं, वे ही तत्त्वका सार मोनी करै म्यंत्रकी आस, बिन गुर गुदड़ी नहीं बे सास। प्राप्त करते हैं। निद्रामें आसक्ति होनेसे जीव कालके अवधू नव घाटी रोकि लै बाट, बाई बणिजै चौसिठ हाट। जंजालमें फँसता है और मैथुनसे बुढ़ापा आ घेरता काया पलटै अविचल विध, छाया विबर जित निपजै सिध। है। अत: नीचे गिरनेवाले (अरध) रेतसुको ऊर्ध्वावस्थासे अवधूत दंभ कौ गहिबा, उनमनि रहिबा, ज्यूँ बाजबा अनहद तूरं। जोड़ना चाहिये। तात्पर्य यह है कि ऊर्ध्वरेता होना गगन मंडलमें तेज चमक्कै चंद नहीं तहाँ सूरं॥ चाहिये। योगीको इस प्रकार रहना चाहिये। उसे उन्मनावस्थामें लीन रहना चाहिये। झरनेपर पानी (अमृत) अति अहार यंद्री बल करै, नासै, ग्यान मैथुन चित धरै। पीना चाहिये। गुरुके मुखसे ज्ञानोपदेश सुननेके लिये व्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल॥ लंका क्या परलंका जाना चाहिये अर्थात् माया (लंका घटि घटि गोरष वाही क्यारी, जो निपजै सो होइ हमारी। घटि घटि गोरष कहै कहाँणी काँचै भांड़ै रहै न पाणी॥ राक्षसोंकी मायाविनी नगरी)-को छोड़कर उससे परे अत्यन्त आहार करनेसे इन्द्रियाँ बलवती हो जाती (पर लंका) हो जाना चाहिये। तभी गुरुका दिया हैं, जिससे ज्ञानका नाश होता है और तब वह व्यक्ति ज्ञानोपदेश हृदयंगम हो सकता है और तब फिर वह वासना-तृप्तिकी इच्छा करने लगता है और उसकी निद्रा वास्तविक योगी हो सकता है। गुरु-महिमामें परमहंस बढ़ जाती है तथा काल उसे ढक लेता है। फिर ऐसा अनन्त श्रीभोपाजी महाराजकी प्रार्थना है (जाग्रत पुरुष हमेशा उलझनमें पड़ा रहता है। जीवनसे)— गोरख प्रत्येक शरीरमें अपना उपदेश कर रहे हैं, गुरु मध्य आदि अनन्त अद्भुत अमल अगम अगोचरम्। अनाहत नाद हो रहा है। परंतु इसका लाभ तो वे ही विभु विरज पार अपार निर्गुण सगुण सत विश्वेश्वरम्॥ उठा सकते हैं, जिन्होंने अपनी कायाको सिद्ध कर लिया जिहि मित लखै निहं तेहि लखै सो शुद्ध तत्व विचार है। है। 'गोरख' शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—जो ब्रह्ममें जो चरण कमलकी ओर आया भवसे बेड़ा पार है।। लीन आत्मा होनेके कारण स्वयं ब्रह्म है, जो प्रत्येक गुरु विष्णु मूरत शिवकी सूरत गुरु वही ब्रह्मा जान तू। व्यक्तिकी शरीररूपी क्यारीको जोतता-बोता है, यानी गुरु ब्रह्मा है पर ब्रह्मा है यह सोच समझके मान तू॥ प्रत्येकके हृदयमें परमात्मा बीजरूपसे मौजूद है, विद्यमान कर गुरुकी संगत रात दिन नर जन्म अपना सुधार ले। है, परंतु गोरखकी ब्रह्मकी वही क्यारी है, जिसमें कुछ दे फेंक माया बोझ सिरसे यमका शीश न भार ले॥

संख्या २ ] ब्रह्मचर्य ( श्रीकैलाशचन्द्रजी शर्मा, चार्टर्ड एकाउण्टेट ) [ लेखकके द्वारा 'श्रीहनुमानचरितमानस' के नामसे एक पद्यबद्ध ग्रन्थकी रचना हुई है, जिसमें श्रीहनुमान्जीसे सम्बन्धित कथाओंका संकलन है, जिसका कुछ अंश यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक ] बिना, केवल योग एवं भक्तिसे सम्पूर्ण कार्यकी सिद्धि नारायण के भक्तवर नारद हैं विख्यात। विश्व विमोहिनि स्मरण कर वे भी हों उद्भ्रान्त॥ नहीं हो पाती है। श्रीमन् नारायणके भक्तश्रेष्ठ नारद तो विश्वमें तेज ओज बल बुद्धि प्रभावा । स्वास्थ्य स्वस्थ निजबोध स्वभावा।। विख्यात हैं ही। अपने साथ घटित हुए विश्वमोहिनी ब्रह्मचर्य के हैं फल फूला। ब्रह्मचर्य इन सबका मूला॥ प्रसंगका स्मरण करके, वे भक्तश्रेष्ठ नारद भी उद्भ्रान्त तेज, ओज, बल, बुद्धि, व्यक्तित्वका प्रभाव, स्वास्थ्य, हो जाते हैं। आत्मबोध तथा स्वरूपावस्थक स्वभावादि तो ब्रह्मचर्यके ही पुष्प एवं फलमात्र हैं। इन सभीका मूल तो ब्रह्मचर्य ही है। देखि सुअवसर संग वर गूढ़ प्रश्न तब कीन्ह। बाल ब्रह्मचर्येंक हैं मारुति परम प्रवीन॥ ब्रह्मचर्य बल से कामारी। हैं त्रिभुवनगुरु अरु त्रिपुरारी॥ सुन्दर अवसर एवं सनकादिकी सुन्दर संगति प्राप्त स्थूल सूक्ष्म कारण त्रय-देहा। ब्रह्मचर्य बिनु ग्रस्त प्रमेहा॥ करके नारदने परम प्रवीण एवं एकमात्र नैष्ठिक बाल ब्रह्मचर्यकी शक्ति से ही भगवान् शिव कामारि, ब्रह्मचारी श्रीहनुमान्जीसे यह गृढ प्रश्न किया। जगद्गुरु एवं त्रिपुरारि बन पाये हैं। ब्रह्मचर्यके बिना मनुष्यके नाहिं हुआ, ना है, न हो, को भविष्य के काल। तीनों शरीर (अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर) अब्रह्मचर्यरूपी प्रमेहसे ग्रस्त होकर रोगी ही बने रहते हैं। ब्रह्मचर्य का अतुल-ध्वज केवल केसरिलाल॥ नारदजीने कहा कि हे केसरीपुत्र! आपके समान खण्डित ब्रह्मचर्य जिस जन का। साधन तेजस्रवत नित उसका॥ ब्रह्मचारी तीनों कालोंमें ना कोई कभी हुआ, ना है तथा फूटे घट सम होहिं न पूरा। साधन रहत सदैव अधूरा॥ ना ही भविष्यमें होगा। अतः सिद्धि इच्छुक साधक वर । समझें ब्रह्मचर्य सम्यक् कर ॥ जिस भी मनुष्य अथवा जनका ब्रह्मचर्य खण्डित ब्रह्मचारि! आचार्यवर! परमविज्ञ! हनुमान। हो जाता है, उसका साधनरूपी तेज रिसता रहता है, इसके तत्त्व रहस्य का दें मुझको भी ज्ञान॥ हे ब्रह्मचारी! हे आचार्यश्रेष्ठ! हे परमविज्ञ! हे बहता रहता है, नष्ट होता रहता है। जिस प्रकार फूटे हनुमान्जी! आप कृपा करके इस ब्रह्मचर्यके तत्त्व एवं हुए घड़ेमेंसे लगातार पानी रिसनेके कारण वह कभी भरा रहस्यका ज्ञान मुझे भी प्रदान करिये। हुआ नहीं रह सकता, वैसे ही जिन लोगोंका ब्रह्मचर्य सुनि सुपात्र से प्रश्नवर जनहित का रख ध्यान। खण्डित हो जाता है, उनका साधनरूपी घड़ा भी कभी पूरा नहीं हो पाता, नित्य अधूरा एवं अपूर्ण ही रहता है। बोले श्रीहनुमान निज अनुभव शास्त्र प्रमान॥ सुपात्र नारदसे उत्तम प्रश्न सुनकर तथा जनहितको अतः सिद्धि प्राप्त करनेके इच्छुक, श्रेष्ठ साधकको ध्यानमें रखते हुए, हनुमान्जीने ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यको सम्यक्तया समझे। शास्त्रीय प्रमाण-मीमांसाके साथ मुख्य रूपसे अपना ब्रह्मचारि का शब्दशः समझ प्रथम भावार्थ। अनुभव, अग्रांकित प्रकारसे कहा। तब समझें इस शब्द का प्रचलित जो रूढ़ार्थ॥ सर्वप्रथम ब्रह्मचारीका शाब्दिक अर्थ समझें, तब प्रश्न तात! तव जन सुखदायी। साधन मणि यह सिद्धि सुहायी। इसके भावार्थको समझें तथा तत्पश्चात् ब्रह्मचर्य शब्दका ब्रह्मचर्य बिनु सुन मुनिराजा!। योग भक्ति से सरहिं न काजा॥ हनुमान्जीने कहा कि हे नारदजी! आपका प्रश्न जो लोकमें प्रचलित रूढ़ार्थ है, उसको समझें। लोक-कल्याणकारी है। सुहावनी सिद्धिके लिए यह तात! शब्द सादृश्य से ब्रह्मचर्य का अर्थ॥ प्रश्न साधनमणिके समान है। हे मुनिराज! ब्रह्मचर्यके सहज स्पष्ट है ग्राह्य है वही मात्र थिर अर्थ॥

भाग ९२ हे तात! शब्द-सादुश्यसे ब्रह्मचर्यका अर्थ सहज जाता है तथा नेति-नेतिकी शास्त्रीय प्रक्रियासे स्वयंके ही स्पष्ट रूपसे ग्रहण किया जा सकता है, समझा जा अतिरिक्त सबका निषेध कर देनेके अनन्तर जो ज्ञप्तिस्वरूप सकता है तथा इस प्रकार समझा हुआ अर्थ ही शेष बच जाता है, वही ब्रह्म है। ब्रह्मचर्यका स्थिर अर्थ होता है। देह करण गो जाय जहँ तहँ दीखे बस ब्रह्म। कर्राहं जो दुराचरण जग माहीं। वही दुराचारी कहलाहीं॥ तत्त्वदुष्टि दर्शन यही यही आचरण-ब्रह्म॥ मिथ्याचरण निरत जन जो भी। है मिथ्याचारी हो को भी॥ तत्त्वदृष्टि एवं उसका दर्शन यह है कि यह शरीर, संसारमें जो दुराचरण करता है वह दुराचारी इसकी दसों इन्द्रियाँ एवं अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त कहलाता है। जो मिथ्याचरणमें लीन है, वह चाहे कोई एवं अहंकार) जहाँ-जहाँ भी जाते हैं, वहाँ-वहाँ केवल भी क्यों ना हो, मिथ्याचारी ही कहलाता है। उस ब्रह्मका ही दर्शन करें, अनुभव करें तथा विवेचन करके उस ब्रह्मको उस-उस विषयमें उपलब्ध करें, तब भ्रष्टाचरण करत जो कोई। भ्रष्टाचारी है बस सोई॥ देह, इन्द्रियों एवं अन्त:करणका यह आचरण ही ब्रह्माचरण निरत जन ताता!। त्योंहि ब्रह्मचारी कहलाता॥ जो भ्रष्टाचरण करता है, बस वही भ्रष्टाचारी ब्रह्माचरण कहलाता है। कहलाता है। वैसे ही, जो ब्रह्माचरण करता है, वह कनकदृष्टि से तात! सब आभूषण ज्यों हेम। ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्रह्मदृष्टि से द्वैत त्यों मात्र ब्रह्म निज प्रेम॥ जिस प्रकार स्वर्णदृष्टिसे स्वर्णके बने हुए समस्त ब्रह्माचरण माहिं दो शब्दा। ब्रह्म और आचरण विदग्धा॥ आभूषण स्वर्णके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हैं ब्रह्म निरुक्त निरूपित नीका। षट्शास्त्रिहिं वेदान्त सटीका॥ ब्रह्माचरणमें दो शब्दों (ब्रह्म एवं आचरण)-को (अर्थात् स्वर्ण ही हैं), वैसे ही, इस संसारको जब ब्रह्मदुष्टिसे देखा जाता है तो यह समस्त संसार भी भलीभाँति निरूपित किया गया है तथा षट्शास्त्रों (पूर्वमीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग तथा ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है (अर्थात् ब्रह्म उत्तरमीमांसा)-में एवं विशेष रूपसे वेदान्तमें, ब्रह्म ही है)। शब्दकी तो विस्तृत टीका (व्याख्या) भी की गयी है। अतः ब्रह्मचारी बस वो ही। स्व पर रहित ब्रह्मचर जो ही॥ जिससे ना कोई बृहत् ना जिससे कोइ सूक्ष्म। तात्त्विक ब्रह्मचर्य यह ताता। निरुपाधिक जन ही गह पाता॥ अज अनन्त गोतीत वह स्वयंसाक्षी सोइ ब्रह्म॥ (चूँकि, ब्रह्मदृष्टिसे जब सब कुछ ब्रह्म ही सिद्ध हो गया है) अत: ब्रह्मचारी केवल और केवल वही जिससे बृहत् (अर्थात् बड़ा) भी अन्य कोई नहीं है तथा जिससे सूक्ष्म एवं छोटा भी अन्य कोई नहीं है, व्यक्ति है जिसकी दृष्टिमें अपने और परायेका तात्त्विक जो अजर है, अमर है, इन्द्रियोंकी पहुँचसे बाहर है, परे भेद समाप्त हो गया है, द्वैत नष्ट हो गया है, द्वन्द्व है तथा जो स्वयं ही अपना साक्षी है (अर्थात् उसके पूर्व, नष्ट हो गया है तथा एकमात्र ब्रह्म ही सर्वत्र पश्चात् एवं समकालमें भी कोई नहीं है), वह ब्रह्म है। अनुभवस्वरूप हो गया है। यह तात्त्विक ब्रह्मचर्यका स्वरूप है। इस तात्त्विक ब्रह्मचर्यकी उपलब्धि केवल सत्य सच्चिदानन्दघन ज्ञान अनन्तिह ब्रह्म॥ और केवल उसीको होती है, जो ज्ञानसे उद्भासित दृढ़ ज्ञप्ति चेतन वही वही सूक्त है ब्रह्म॥ जो एकमात्र सत्य है, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है, होकर सर्वथा निरुपाधिक हो जाता है (अर्थात् जिसकी ज्ञान है, अनन्त है तथा सर्वव्याप्त चेतन है, उसे ही ब्रह्म दृष्टिमें सब कुछ ब्रह्म सिद्ध हो जानेसे नाम-रूप-कहा गया है। सम्बन्धादि एवं नर तथा नारीका लिंगादि भेद पूर्णतः उपाधिजन्य सिद्ध हो जाता है, दार्शनिक स्तरपर अभेद अध्यारोपऽपवाद से निष्प्रपञ्च जो होय। हो जाता है, महत्त्वहीन हो जाता है, व्यावहारिक भर नेति नेति के अन्त पर ज्ञप्ति कहावहि सोय॥ HinguismuDiscord Sexven https://dsexgg/ghagmandn MAPEWHTH LAVER & Avinash/Sha

संख्या २] ब्रह्म	•
<u> </u>	
आधि व्याधि समाधि उपाधी। ब्रह्मचर्य में बाधक क्षाधी॥	स्वर्णकी बनी हुई नरमूर्ति एवं नारीमूर्तिमें स्वर्णकी
जब निर्मान होय सब भाँती। तन मन गो ना मान दिखाती॥	दृष्टिसे कोई वास्तविक अथवा तात्त्विक भेद नहीं होता,
आधि (अर्थात् मानसिक संवेदनाएँ), व्याधि	दोनों केवल स्वर्णका ही विवर्तन होते हैं तथा उनमें
(अर्थात् शारीरिक एवं भौतिक संवेदनाएँ), समाधि	परस्पर कोई आकर्षण-विकर्षण भी नहीं होता है। जब
(अर्थात् स्वरूपावस्थानकी स्थितिमें बाह्य संवेदनाओंसे	ऐसा है, तो विचार करिये कि वास्तविक नर-शरीर एवं
रहित अवस्था) एवं समस्त <b>उपाधियाँ</b> (अर्थात्	नारी-शरीर भी स्वर्णके नर-नारीकी तरह केवल और
जगन्नाटकमें नाटकके मंचनके लिये विभिन्न पात्रों या	केवल जड़ पञ्चभूतोंसे ही तो बने होते हैं, अत: उनमें
किरदारोंको दिये गये नाम, रूप एवं कार्योंको सत्य	भेद अथवा आकर्षण किस आधारपर हो सकता है?
समझनेकी भूल) तात्त्विक ब्रह्मचर्यकी सिद्धिमें बाधक	दूसरे शब्दोंमें, कैसे विचारसम्मत एवं सत्य हो सकता
हैं। जब प्राणी अपनी ब्रह्मदृष्टिसे सर्वथा अमान (अर्थात्	है ? अर्थात् नहीं हो सकता। यदि ऐसा है, तो फिर
अज्ञानसे अपने आपको प्राणी, मनुष्य, हिन्दू–मुसलमान,	व्यवहारमें आकर्षण पाया ही क्यों जाता है? इसका
नर-नारी, ब्राह्मण-शूद्र, उच्च-निम्न, शिक्षित-अशिक्षित,	प्रथम कारण है अविचार (अर्थात् आपने कभी इस नर-
धनी–निर्धन, पिता–पुत्र आदि मान बैठनेकी भूलको	नारीके परस्पर आकर्षणपर सत्य एवं तत्त्वकी दृष्टिसे
समझ जाता है तथा उस भूलको सुधार देता है और उन–	विचार ही नहीं किया, चिन्तन-मनन ही नहीं किया,
उन मिथ्या मानोंको मनसे त्याग देता है, उनसे मुक्त) हो	सोचा ही नहीं) तथा दूसरा कारण है अध्यास।
जाता है तथा उसे जगन्नाटकमें स्वॉंगके लिये धारण	(अध्यासका निरूपण आगे किया गया है। संक्षेपमें,
किये गये तन एवं मनका अभिमान नहीं रहता, तो वह	अध्यासका तात्पर्य है अज्ञानजन्य भ्रान्ति। उदाहरणके
निर्मान कहलाता है।	तौरपर आकाशमें ऊचाँईपर उड़ते हुए गिद्ध पक्षियोंको
देहदृष्टि जब रहे न शेषा। लिंग-भेद निर्भेद अशेषा॥	जब नीचे लाल पत्थर दिखायी देते हैं तो भ्रान्तिसे वे उन्हें
लिंग-भेद बिनु किमि आकर्षण। ब्रह्मचर्य का हो तब वर्षण॥	मृतपशुका मांस समझकर झपट पड़ते हैं तथा अपनी
जब उसकी देहबुद्धि एवं लिंगभेद (अर्थात् स्वॉॅंगके	चोंचको क्षतिग्रस्त कर लेते हैं। इसी प्रकार, यद्यपि नर
लिये जिस नर या नारीका रूप धारण करता है, अपने	एवं नारीके शरीरमें जो पंचभूत होते हैं, वे समान एवं
आपको वही मान लेनेकी आदत, प्रवृत्ति, स्वभाव एवं	एक-जैसे ही होते हैं तथा जो चेतन आत्मा होती है वह
भ्रान्ति)-की पूर्णत: जड़ ही कट जाती है, तब लिंगभेदके	भी समान ही होती है तथापि इस सत्यको नहीं देख
बिना कोई भी पारस्परिक आकर्षण रह ही नहीं जाता	पानेके कारण नर-नारीको एक-दूसरेके शरीरमें मिथ्या
है। इस प्रकार, देह एवं लिंगभेदजन्य आकर्षणरहित	आकर्षण प्रतीत होता है, जिसके कारण वे मृत्युपर्यन्त
आचरणकी स्थितिमें ही ब्रह्मचर्यका पूर्ण वर्षण होता है,	ग्रस्त, त्रस्त एवं पस्त रहकर अपने अमूल्य जीवनको ही
विकास होता है।	क्षतिग्रस्त कर लेते हैं एवं कई लोग तो नष्ट ही कर लेते
लिंग-भेद राहित्य प्रभावा । ना हो स्खलित न का प्रभावा ।।	हैं)। नर या नारीके शरीरमें प्रतीत होनेवाले अध्यास एवं
ओज सुरक्षित उसका होई। सूक्ष्म ब्रह्मचारी है सोई॥	अध्यासजन्य मिथ्या आकर्षणके कारण अनेक जन्मोंके
इस तरह जो लिंगभेदसे प्रभावित नहीं होता, वह	संस्कार निर्मित हो जाते हैं, जो लिंगभेदके आकर्षणमें
फिर स्खलित या आकर्षित भी नहीं हो सकता। ऐसी	सुखका मिथ्या अनुभव करवाते रहते हैं, वैसे ही, जैसे
स्थितिमें, उसके ओजका संरक्षण हो जाता है। ऐसा	कि मनुष्य इस मिथ्या संसारमें, चलचित्रोंके दृश्योंके
व्यक्ति ही सूक्ष्म ब्रह्मचारी कहलाता है।	समान मिथ्या नाम-रूप-सम्बन्धादिसे अकारण ही हर्ष-
कनक नारि-नर भेद न जैसे। ना आकर्षण ता में तैसे॥	विषादका अनुभव करता रहता है।
त्योंहि पाँचभौतिक नर नारी। भेदाकर्षण सत्य कहाँ री॥	दर्शन में नर नारि उभय ही। पुरुष कथित व्युत्पत्ति सुलभ ही॥

भाग ९२ देगा एवं मानवको ओजस्वी एवं तेजस्वी बना देगा। मोह न पुरुष पुरुष कै रूपा। यह नैसर्गिक नीति अनुपा॥ वैसे भी, पुरुषकी सुलभ व्युत्पत्तिके अनुसार, जग नाटक दर्शन गहो सम्यक् सांगोपांग। भारतीय दर्शनमें तो नर एवं नारी, दोनों ही, शरीररूपी ब्रह्म विवर्तन जग लखो मिटे काम का स्वांग॥ पुरमें शयन करनेके कारण पुरुष ही कहलाते हैं। (अत: इस तरह, जगन्नाटकके दर्शनको, अंगों-उपांगोंसहित, यदि विचारकी इस सरणि एवं रहस्यको ठीकसे समझ सम्यक्तया समझ लेनेसे तथा इस सम्पूर्ण जगत्को लिया जाय, तो नर एवं नारीमें परस्पर आकर्षणका कोई अद्वयब्रह्मका ही विवर्तन जान लेनेसे, यह अनंग, मनोज विचारसम्मत तत्त्व अथवा सच्चा आधार बच ही नहीं या काम स्वयं ही मारा जाता है, नष्ट हो जाता है, जाता है, क्यों नहीं बच जाता है? क्योंकि तत्त्वत: निष्क्रिय हो जाता है, निर्विष-सर्पके समान इससे शरीररूपी पुरमें शयन करनेके कारण सभी पुरुष हैं, उपद्रवकी कोई आशंका नहीं रह जाती है। अभेद हैं,) अन्यथा भी, यह एक प्राकृतिक सिद्धान्त है, जो अस तो किमि है आकर्षण। है अविचाराध्यास हि कारण॥ नीति है कि पुरुष कभी भी पुरुषकी तरफ आकर्षित या सञ्चित संस्कार जन्मन्ह के। है सुख हेतु लिंग भेदहिं के॥ मोहित नहीं होता है। अत: विचारके इस धरातलपर, यदि ऐसा है तो फिर लिंगभेद होनेसे आकर्षण क्यों कामजन्य कामुकताका तो व्यवहारमें प्रवेश ही नहीं हो होता है, यह प्रश्न है। उत्तर दिया जा रहा है कि वास्तवमें सकता। नर एवं नारीके शरीरमें [(१)सजातीय पुरुषत्व, अविचार एवं अध्यास ही इस आकर्षणका एकमात्र (२)पञ्चभूतोंकी समानता एवं, (३)चेतन आत्माकी कारण है। अनेक जन्मोंके संस्कार ऐसे बन गये हैं, जिनके चलते लिंगभेद आकर्षण एवं सुखका कारण बना हुआ एकता आदि] उपयुक्त समानताओंके कारण कामावेशकी है। यदि कभी भी कोई गम्भीरतासे इस तथ्यपर विचार करे सम्भावना ही समाप्त हो जाती है। कि सभी शरीरोंमें जब एक ही प्रकारके पञ्चभृत हैं तथा कदाचरण का मूल नसावे। काम प्रभाव न कुछ कर पावे॥ एहि रहस्य को गहि सविवेका। परस्पराकर्षण हत नीका।। सभी शरीरोंमे आत्मचैतन्य भी एक ही है, केवल मिथ्या नामरूपात्मक प्रपंचका ही भेद प्रतीत होता है, तो लिंग-(नर-नारीकी विजातीय एवं विपरीत-लिंग देहका परस्पर आकर्षण ही) व्यावहारिक तौरपर कदाचरणका भेदजन्य आकर्षण एवं सुखका कोई भी ठोस कारण या मूल आधार सिद्ध होता है। किंतु विचारकी उक्त शैली आधार सिद्ध ही नहीं हो सकता। एवं तीक्ष्ण धारसे कदाचरणका वह मूल आधार ही नष्ट उभय लिंगी भी है इक ताता! । इक अद्वैत न समझें बाता॥ हो जाता है, जिसमें नर एवं नारी दोनों ही पुरुष सिद्ध इक इक दो पुनि बहु हो आगे। गणित न अद्वैतिहें पर लागे॥ हो जाते हैं और इसीलिए इस पुरुषत्वको पहचान लेनेसे एकलिंगियों (नर-नारी)-के उपरान्त अब उभय कामुकता पूर्णतया प्रभावहीन हो जाती है। इस प्रकार, उभयलिंगियोंपर विचार करते हुए यह कहा जा रहा है मनुष्य अपने सुविवेकको जगाकर यदि उक्त विचारधारा कि उभयलिंगी (अर्थात् एक ही शरीरमें नर-मादा एवं तात्त्विक दर्शनकी दृष्टिको ग्रहण कर ले (जो होना) उभय होते हुए भी एक ही (अर्थात् नर एवं मादा शिक्षण, स्वाध्याय एवं चिन्तन-मननसे सर्वथा सम्भव अंग एक ही शरीरमें) होते हैं। किंतु इनके एक होनेका तात्पर्य अद्वैत होना नहीं होता, क्योंकि एक और अद्वैत है), तो देहजन्य परस्पर आकर्षण ही नष्ट हो जाता है। कामजन्य अपराध जगत् में। तब स्वयमेव मिटें पल भर में॥ समान नहीं होते। (परस्पराकर्षण एवं कामुकताका अन्त अद्वैतमें होता है, एकमें नहीं। यही कारण है कि विवर्तन-दर्शन एहा। नासत् कदाचरण परमेहा॥ विचारकी उक्त स्थिति प्राप्त होनेपर, इस संसारसे उभयलिंगी एक होते हुए भी उनके नर एवं मादा अंगोंमें कामजन्य समस्त अपराध क्षणभरमें स्वयमेव नष्ट हो परस्पर आकर्षण होता है)। जायँगे। अत: सिद्ध यह हुआ कि विवर्तवादके दर्शनका एक सदैव गणित सापेक्षा। अद्वय स्वयं विचार अशेषा॥ यह दुष्टिकोण कदाचरणरूपी प्रमेहको अवश्य नष्ट कर जो अमान वह ज्ञप्ति स्वरूपा। द्रष्टा दुङ् साक्षि निज रूपा॥

संख्या २ ] जहाँ एककी अवधारणा होती है वहाँ तो एक उपरान्त ही सध सकता है, अन्य किसी तरहसे नहीं। दूसरे और एक दो हो ही जाते हैं, द्वैत उत्पन्न हो ही शब्दोंमें, बिना अद्वैतसिद्धिके ब्रह्मचर्य सध ही नहीं सकता। बरु जल बिनु रस पावहिं कोई। भू बिन गन्ध गहे बरु कोई।। जाता है (तथा द्वैतमें फिर एक जुडनेसे त्रैत एवं इसी क्रममें फिर बहुत्व, अनेकत्व एवं नानात्व भी अग्नि तत्त्व बिनु ताप प्रकाशा। हो नभ बिनु चाहे अवकाशा॥ हो जाता है।) एक और अद्वैतमें स्थूल अन्तर यह बरु गति स्पर्श वात बिनु ताता। मौन सिद्ध सह हो कोई बाता॥ है कि एककी अवधारणा तो गणितसापेक्ष होती है चले नाँव बिनु जल के चाहे। बिना प्राण हो जीवन चाहे।। जबिक अद्वैत कभी भी गणितसापेक्ष नहीं होता। अनहोनी होनी बरु होवे। रवि शशि बिनु औषध वर होवे।। अद्वेतकी अवधारणा गणनामूलक नहीं अपितु विचारमूलक चाहे जलके बिना किसीको रसकी प्राप्ति हो जाय, है। अद्वैत एक विचार है, दर्शन है, चिन्तन एवं पृथ्वीके बिना किसीको गन्ध प्राप्त हो जाय, अग्निके बिना मननकी विधा है न कि कोई संख्यात्मक अवधारणा। ही चाहे किसीको ताप एवं प्रकाशकी उपलब्धि हो जाय, जो अमान होता है(अर्थात् मनुष्यादि जातिमान, हिन्द् आकाशके बिना चाहे किसीको अवकाश मिल जाय, मौन आदि धर्ममान, नर-नारी आदि लिंगमान, देहादि द्रव्यमान, धारण किये-किये ही चाहे कोई बातचीत कर ले, जलके ब्राह्मणादि वर्णमान, पापी-पुण्यात्मा एवं सुखी-दुखी बिना ही चाहे नाव चल जाय, प्राणोंके बिना ही चाहे आदि अभिमानरूपी मानादिको स्वीकार ही नहीं करता, जीवन चलता रहे, असम्भव चाहे सम्भव हो जाय, प्रत्युत अपने स्वरूपमें नेति-नेतिके द्वारा इन समस्त चन्द्रमाके बिना ही चाहे ओषधियाँ जीवित रह जायँ। मानोंको नकार देता है, निषेध कर देता है) वह किन्तु पूर्ण अद्वैत की सिद्धि न जब तक होय। केवल ज्ञप्तिस्वरूप (अर्थात् ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाताकी त्रिपुटीके ब्रह्मचर्य तब तक किमपि तात! अखण्ड न होय॥ परे), द्रष्टास्वरूप एवं साक्षीस्वरूप (अर्थात् शरीर, किंतु जब तक अद्वैतकी पूर्ण सिद्धि नहीं हो जाती, इन्द्रियों एवं अन्त:करणादि वृत्तियोंके कार्योंका निर्लिप्त अद्वैतकी अवधारणा एवं विचार जबतक पूर्णत: आत्मसात् साक्षी)ही होता है। नहीं हो जाते, तबतक ब्रह्मचर्य किसी भी प्रकारसे बिना मान रह सकहि न द्वैता। द्वैतरहित अनुभव अद्वैता॥ अखण्डित नहीं हो सकता। क्लेश विकार गुणादि समस्ता। होते अद्वय के नित ध्वस्ता॥ ब्रह्मचर्य रूढ़ार्थ में जग में है विख्यात। इस प्रकार, विचारके द्वारा, मानमात्रका ही निषेध योग भक्ति ओषधि समा साधन हैं कुछ तात!॥ हो गया, तो द्वैत फिर रहेगा ही कहाँ ? उसका तो आधार ब्रह्मचर्यको जिस रूढ अर्थमें संसारियोंद्वारा समझा ही नष्ट हो गया। अतः द्वैतरिहत जो आत्मानुभव होता जाता है, वह तो प्रसिद्ध है ही। उस रूढ़ अर्थवाले है, वही अद्वैत होता है (जिसमें परस्परताकी अवधारणाका ब्रह्मचर्यको साधनेके लिए कुछ शास्त्रीय साधन हैं, जैसे कि भगवान्की भक्ति तथा चित्तवृत्तियोंको अष्टांगयोगद्वारा ही समूल विनाश हो जानेसे कामाकर्षणकी कोई सम्भावना ही नहीं बचती।) रागद्वेषादि समस्त क्लेश, निरुद्ध करना। काम-क्रोधादि विकार एवं सत्-रजादि त्रिगुण कभी भी ब्रह्मचर्य का सूक्ष्मतः यह संक्षिप्त सुसार। अद्वैतमें अस्तित्वमान हो ही नहीं सकते, जीवनलाभ कर साधुन्ह को हो ग्राह्य यह करे उन्हें भव पार॥ ही नहीं सकते, ध्वस्त ही रहते हैं। यह आकांक्षा है, शुभेच्छा है कि ब्रह्मचर्यका यह सूक्ष्म सारसर्वस्व साधकगणको ठीकसे ग्रहण हो जाय, ब्रह्मचर्य परिपूर्ण अखंडा। बिनु अद्वैत न सधिहं प्रचण्डा॥ समझमें आ जाय, आत्मसात् हो जाय तथा उन्हें भव-जब अद्वैत सधे सुन ताता। ब्रह्मचर्य तब ही सध पाता॥ यह प्रचण्ड, परिपूर्ण एवं अखण्डित ब्रह्मचर्य केवल सागरके पार लगानेवाला सिद्ध हो। और केवल अद्वैतके विचारको आत्मसात् कर लेनेके [ सम्पर्क-सूत्र--०७६७८६३८४१९ ] गोमूत्रके चमत्कार

### १. कब्जकी रामबाण औषधि—गोमूत्र ज्यादा बैठे रहनेकी सलाह देते और कहते—पाँवका तो

मैं लगभग १५-१६ वर्षोंसे कब्जरोगसे बुरी तरह पीड़ित था, बिना दवाके एक दिन भी शौच नहीं होता था। इसके लिये मैंने अनेक डॉक्टरोंसे चिकित्सा करायी, लेकिन कोई विशेष

फायदा नहीं हुआ। भोजनसे जरूरी मेरी दवा थी, जिसमें प्रति-माह हजारों रुपये लग जाते थे, फिर भी पेट साफ नहीं होता था।

सन् १९९३ के जनवरी माहके आस-पास मुझे बुखार

हुआ, लेकिन उस बुखारसे मैं पूरे एक वर्षतक परेशान रहा।

पहले सिरदर्द होता, फिर उलटी होती और फिर बुखार हो आता। बनारसमें रेलवेके एक डॉक्टरकी दवाका एक वर्ष

सेवन किया। दवाके सेवनतक तो ठीक रहा, किंतु दवा बन्द करते ही १९९५ में फिर वही हाल होने लगा, तब मैं पुन: रेलवेके उसी डॉक्टरके पास गया एवं दवा लेकर 'गीताप्रेस'

उसी समय मेरी दृष्टि 'कल्याण' के 'गोसेवा-अंक'पर पड़ी तो मैंने उसे भी खरीद लिया और घर चला आया। उसी 'गोसेवा-अंक' में गोमूत्रसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा वर्णित थी। पढ़कर तदनुसार मैं भी गोमूत्रका सेवन सुबह मुँह

की दुकानमें गया। वहाँ अपनी पसन्दकी कुछ पुस्तकें लीं,

धोकर खाली पेट करने लगा किंतु बहुत ही आश्चर्य हुआ कि दो-तीन दिनमें ही मेरे सभी रोग-कब्ज, सिरदर्द, उलटी, बुखार खत्म हो गये एवं मैंने सभी अंग्रेजी दवाइयोंका सेवन

बन्द कर दिया। जबकि मैं एक दिन भी बिना दवाके नहीं रह सकता था।विगत १५ वर्षींमें मैंने लगभग ८०-९० हजार रुपयेसे ज्यादा सिर्फ दवा आदिमें ही खर्च कर दिये थे। मेरा एक रुपया

भी दवामें खर्च नहीं हुआ। मैं तो कभी-कभी जीना भी नहीं चाहता था। रोगोंकी पेरशानीसे मैंने तो यह सोचा भी नहीं था कि मेरे जीते-जी रोग ठीक होंगे, किंतु यह सब गोमूत्रका ही

चमत्कार है, जो अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।—अरुणकुमार गुप्ता २. गोमूत्रके प्रयोगसे गठिया वात दूर हो गया

इस स्तरतक पहुँच गया कि मेरे दोनों घटनोंमें असहनीय

सन् १९९२ ई० से मैं गठिया रोगसे पीड़ित था। गठिया

पीड़ा होती थी। ज्वर भी हो आता था। धीरे-धीरे मेरे दोनों घुटने आपसमें जुड़ने-से लगे और मैं बेकार हो गया। इस

बीच ऐलोपौथिक और होमियोपैथिक दवाएँ भी काफी हुईं,

इलाज मुश्किल है, पर अगर तुम बैठने और हाथसे लिखते रहनेका अभ्यास रखोगे तो बैठे-बैठे कुछ काम कर सकते हो, जिससे तुम्हारा मन कुछ समय काममें लगा रहेगा और

> बीमारीसे भी हटेगा। में पलंगसे अपने पाँवको हाथ और पीठके बलसे खींचकर कुर्सीपर बैठनेका अभ्यास करता। कभी कुछ

लिखता, कभी कुछ आध्यात्मिक पुस्तकें पढता। चार-पाँच घंटे बैठनेके बाद पीठमें बहुत पीडा होती, दूसरी तरफ

पाँवकी भी पीड़ा बहुत सताती। तब मैं मन-ही-मन भगवान्से कहता कि 'हे भगवान्! मैं अपने कर्ममें जो

लिखाकर लाया हूँ, वह तो मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा, पर अगर आप चाहें तो दर्दमें कुछ राहत दिला दें, तािक मैं अपना काम तो शान्तिसे करता रहूँ।' मेरी करुणाभरी प्रार्थना भगवान्ने सुन ली। सन् १९९५

ई॰में 'कल्याण के विशेषांकके रूपमें 'गोसेवा-अंक ' छपा, उसे देखकर-पढ़कर मुझे यह लगा कि यह तो मेरे लिये ही निकला है। उसमें गोमूत्र-महौषधिका एक लेख था और उस लेखमें वात-व्याधिके दो नुस्खे बताये गये थे। जिसमेंसे मैंने

बड़ा लाभ हुआ। नुस्खे थे—(१) गोमूत्रका सेवन एरण्ड-तेलके साथ करनेपर कोई भी वात-व्याधि हो वह जडसे नष्ट हो जाती है। (२) गोमुत्रके साथ महारास्नादि क्वाथ

लेनेसे संधिवातमें लाभ होता है। मैं तीन महीने नियमसे आधा कप गोमूत्र और दो चम्मच क्वाथ लेता रहा। साथ ही, गोमूत्रसे पूरे शरीरकी

मालिश और गर्म गोमूत्रका सेंक जोडमें करता था। गोमूत्रसे मेरे जोड़ोंपर चींटी चलने-जैसा अनुभव होने लगा और

धीरे-धीरे मैं पूर्ण स्वस्थताकी ओर बढ़ने लगा। इस तरह मेरे दर्दमें ८५ प्रतिशत लाभ हुआ। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि गोमुत्रके सेवनके साथ सात्त्विक भोजन ही किया जाय।

बड़े विश्वाससे एक नुस्खेका प्रयोग किया और इससे मुझे

अधिक मिर्च-मसाला, खटाई, तली-भुनी चीजोंका सेवन नहीं करना चाहिये। मेरा तो यही परामर्श है कि अगर

किसीको शरीरके किसी भागमें दर्द हो तो उसे गोमूत्रका पमानीसरीऽलाकाङ्टरही । Serverage अस्ति अस्ति अस्ति स्वारा अवस्ति अवस्ति अवस्ति अवस्ति अवस्ति अस्ति । अस्ति अ संख्या २ ] साधनोपयोगी पत्र साधनोपयोगी पत्र विशुद्ध आत्मा अथवा भगवान्का किंकर है। '*चेतन* (8) अमल सहज सुखरासी 'है। जबतक वह मायाके अधीन घरमें रहकर भजन कीजिये प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र होकर भूला-भटका फिरता है, तभीतक प्रभुसे दूर या मिला। आप भगवत्साक्षात्कारके लिये क्या त्याग करना विलग-सा हो रहा है। इस भ्रम या अज्ञानको दूर करनेका चाहते हैं-यह आपने नहीं लिखा। यदि आप सच्चे उपाय है अनन्य भक्तिके द्वारा प्रभुका साक्षात्कार अथवा संतोंका संग करेंगे और भगवद्भजन करना चाहेंगे तो विवेकनिष्ठाके द्वारा तत्त्वज्ञानकी उपलब्धि। प्रभु-भजन ही आपका कोई विरोध नहीं करेगा। आरम्भमें कुछ विरोध सुगम और अमोघ उपाय है, उससे तत्त्वज्ञान भी प्राप्त हो सकता है; किंतु फिर सब शान्त हो जायँगे। होता है; अत: प्रभुकी निरन्तर भक्तिद्वारा उनके साक्षात्कारका यत्न प्रत्येक जीवको करना चाहिये। परंतु कई बार देखा गया है कि भजन और सत्संगके नामपर कोई-कोई नवयुवक क्षणिक आवेशमें आकर (२) ईश्वरको 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' व्यर्थ अपने घरवालोंको तंग करते हैं, ऐसा नहीं होना कहा गया है। वे करने, न करने अथवा अन्यथा करने चाहिये। यदि भजनकी सच्ची लगन है तो उसे दबाने की (विधानको पलट देने)-में भी समर्थ हैं। सारांश यह है जरूरत नहीं है। भजन करते हुए घरवालों की यथेष्ट सेवा कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। आपकी शंका है—'क्या कीजिये। उनके प्रति भी आपका कर्तव्य है तथा उनकी वह बीते हुए समय (भूतकाल)-को लौटा सकता है?' उत्तरमें निवेदन है, 'हाँ'। भूत, वर्तमान और भविष्यका सेवा भी श्रीभगवान्की ही सेवा है। ऐसे भावसे जो भजन एवं सेवा करते हैं, वे अपना और घरवालोंका, दोनोंका भेद उन्हीं लोगोंके लिये है, जिनका जीवन एक नियत समयतकके लिये है। नित्य सनातन परमात्माकी दृष्टिमें कल्याण कर सकते हैं। शेष भगवत्कृपा। न भूत है, न भविष्य। उनके लिये सब कुछ वर्तमान है। (२) वे स्वयं ही काल हैं, उन्हींके गर्भमें यह सारा प्रपंच चल काम नरकका द्वार है रहा है। आपने पुराणोंमें पढ़ा होगा, जब सारे जगत्का सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंपर मेरा अपना विचार इस प्रकार है-प्रलय हो गया था; सब कुछ एकार्णवमें डूब चुका था, उस समय भी बालरूपधारी मुकुन्दके मुखमें प्रवेश करके 'मायाबस परिच्छिन्न जड जीव कि ईस समान' में 'जड़' शब्द अज्ञानीका वाचक है। अज्ञानी जीव ही महर्षि मार्कण्डेयने तीनों लोकोंका पूर्ववत् दर्शन किया अपने स्वरूपको भूल जानेके कारण अपनेको मायाके था। एक ही व्यक्तिने एक ही समय प्रलय और सृष्टि अधीन और परिच्छिन्न मानता है। प्रभुकी कृपासे उनका दोनोंका दृश्य देखा था। वास्तवमें हम सूर्यके उदय-साक्षात् कर लेनेके बाद अज्ञान नहीं रहता। फिर मायाकी अस्तद्वारा कालकी गणना करके भूत, भविष्य, वर्तमानका अधीनता और परिच्छिन्नताका भ्रम भी नहीं होता। यही विभाग करते हैं; परंतु काल तो नित्य शाश्वत है, वह जीवका शुद्ध रूप है। वह अपनेको भगवान्का किंकर तो उस समय भी रहता है, जब सूर्य-चन्द्रका पता भी मानता है और सब कुछ भगवत्स्वरूप समझता है। उसके नहीं चलता। कालके ही उदरमें सूर्य-चन्द्रमाकी सृष्टि और भगवान्के बीच फिर कोई दूसरी वस्तु नहीं आती। होती है। 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।' वह भगवान्की सेवाका सुख उठानेके लिये ही अपनेको हम कालका आरम्भ कल्प अथवा सृष्टिके आरम्भसे उनसे पृथक् रखता है। वस्तुतः तो वह भी भगवत्स्वरूप मानते हैं; परंतु उस महाकालके जठरमें न जाने कितने ही है। इस प्रकार शुद्ध रूपमें आया हुआ जीव भगवान्के करोड़ों बार सृष्टि और प्रलयकी लीला हो चुकी है। सदृश ही नहीं, उनसे अभिन्न है। फिर तो वह 'जीव' नहीं, अतः नित्य कालकी दृष्टिसे भूत-भविष्य मिथ्या हैं;

भूत कहते हैं, वह प्रभुके स्वरूपमें वर्तमान ही हो तो क्या शत्रुको मार डालो।' आश्चर्य है? जिह शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ नरकके तीन दरवाजोंमें काम सबसे प्रमुख है। (३) आपकी जीवन-गाथा पढ़ी। पढ़कर खेद हुआ। आप उच्च कुलमें उत्पन्न हुए हैं। आपके घरमें आपकी पत्नी देहातकी सीधी-साधी महिला हैं, इसे आप धर्माचरणका वातावरण है। सब लोग उच्च विचारके अपना सौभाग्य समझें। यदि सतीत्वको कुसंस्कार माननेवाली और सच्चरित्र हैं। आपलोगोंके यहाँ साधु पुरुष भी कोई स्वेच्छाचारिणी आपको मिल गयी होती तो वह आते-जाते हैं, तब भी आपके हृदयमें इतना भयंकर मोह आपके पहले ही आपके पथका अनुसरण करती! यदि अभीतक कैसे बना हुआ है? भाई! भोगोंकी तृष्णाका आप एक निरपराध पत्नीके रहते हुए दूसरीका चुनाव कभी अन्त नहीं होता है। आपने मनोनुकूल पत्नीकी करने चलते तो वह बहू भी शायद दूसरा पुरुष चुननेमें तिनक भी संकोच नहीं करती। उस समय आपके हृदयमें सार्थकता इसीमें समझी है कि भोगोंकी अबूझ पिपासाको शान्त करनेका अबाध अवसर प्राप्त हो। राजा ययातिके जो आग जलती, उसे बुझानेकी आपमें शक्ति नहीं रह सोलह हजार दो स्त्रियाँ थीं। अपनी सोलह हजार सुन्दरी जाती। अबतक पत्नीने आपकी इन दुष्प्रवृत्तियोंको जानकर सिखयोंके साथ शर्मिष्ठा उनके अन्त:पुरमें रहती थीं और भी विरोध नहीं किया; यह भारतीय सतीकी सहज

रहा है!

शान्त नहीं हुई और वे दुखी होकर पुकार उठे—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हिवषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।

एकस्यापि न पर्याप्तं तिदत्यिततृषां त्यजेत्॥

पूर्णं वर्षसहस्त्रं मे विषयासक्तचेतसः।

तथाप्यनुदिनं तृष्णा यत्तेष्वेव हि जायते॥

'भोगोंकी इच्छा कभी भोगसे नहीं शान्त हो सकती,
जैसे घी डालनेसे आग और प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार
भोग भोगनेसे उसकी इच्छा और बढ़ती जाती है। इस

संसारमें जितने धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब

एक मनुष्यके लिये भी पूर्ण नहीं हैं; अर्थात् ये सब एक

पुरुषको ही दे दिये जायँ तो भी वह यह नहीं कह सकता कि

'बस, अब पूरा हो गया, और कुछ नहीं चाहिये।' विषयोंमें

मनको फँसाये हुए मुझे एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तो भी

प्रतिदिन उन्हींकी लालसा बनी रहती है।'

अप्रतिम रूपवती देवयानी उनकी महारानी थीं। फिर भी

हजारों वर्षोंतक विषयसेवनके बाद भी उनकी तृष्णा

वर्तमान ही सत्य है; ऐसी दशामें जिसे हम अतीत या

आप विवेकशील हैं, ईश्वरके समान बननेकी इच्छा रखनेवाले शुद्ध चेतन सहज सुखराशि आत्मा हैं; फिर जड़ हाड़-मांसकी पुतलीपर पागल होकर अपना सर्वनाश क्यों कर रहे हैं? मनुजी कहते हैं—'मनुष्यकी आयुको नष्ट करनेवाला पाप परस्त्री-सेवनसे बढ़कर दूसरा नहीं है।' अबसे भी आप अपने पूर्वजोंकी, अपने कुलकी मान-मर्यादाको ध्यानमें रखकर आत्मोत्थानके पथमें लगें। विषयके कीट बनकर नरकमें पहुँचनेके लिये सुरंग

न खोदें। मेरा तथा समस्त शास्त्रोंका मत यही है कि

इस पाप-पथपर आप पैर न रखें। सत्संग करें। सत्पुरुषोंकी

जीवनी पढें। माता दुर्गा आपकी इष्टदेवी हैं, उनसे रोकर

उदारता है। वह उपेक्षा और तिरस्कारको चुपचाप पी

जाती है; परंतु पतिको दु:ख न हो, इसके लिये 'उफ्'

भी नहीं करती। इन सितयोंके इस त्याग और बलिदानका आप-जैसे पुरुष अनुचित लाभ उठाने लगे हैं। इसीलिये

अब नारियोंमें भी इसकी प्रतिक्रिया होने लगी है और इस

प्रकार हमारा समाज रसातलकी ओर गिरता चला जा

लिये गीताका स्पष्ट आदेश है—'इस कामरूपी दुर्धर्ष

भाग ९२

गीतामें 'काम' को 'दुष्पूर अनल' कहा है अर्थात् प्रार्थना करें—'माँ! मुझे बल दो, मैं तुम्हारा योग्य पुत्र काम वह अग्नि है, जिसमें विषयोंकी कितनी ही आहुति बन सकूँ। सदा सर्वत्र समस्त स्त्रियोंमें केवल तुम्हारे पड़े, वह कभी तृप्त नहीं होता। उसका कभी पेट नहीं मातृरूपके ही दर्शन करूँ।' माता आपका मंगल करेंगी। भरता। इसीलिये वह 'महाशन' भी कहा गया है। इसके शेष प्रभुकृपा!

व्रतोत्सव-पर्व

## व्रतोत्सव-पर्व

,,

,,

,,

,,

,,

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि नक्षत्र

दिनांक

२ मार्च

प्रतिपदा रात्रिमें ४। ३४ बजेतक पू०फा० रात्रिमें १०।३० बजेतक शुक्र

संख्या २ ]

शनि उ०फा० 🗤 ९।५६ बजेतक द्वितीया 🕖 ३। २७ बजेतक रवि हस्त ११९। ४८ बजेतक

तृतीया <table-cell-rows> २ । ४७ बजेतक

चतुर्थी 🕖 २। ३५ बजेतक सोम वित्रा 🗤 १०। ९ बजेतक

पंचमी 🕠 २।५५ बजेतक मंगल स्वाती "११।० बजेतक

विशाखा 😗 १२। २६ बजेतक 🕓 षष्ठी 🕠 ३।४९ बजेतक बुध

अनुराधा 😗 २।१२ बजेतक

ज्येष्ठा रात्रिमें ४। २५ बजेतक शुक्र

सप्तमी रात्रिशेष ५। ८ बजेतक गुरु

अष्टमी अहोरात्र शनि मूल अहोरात्र

अष्टमी प्रात: ६ ।५० बजेतक नवमी दिनमें ८।५१ बजेतक रवि मूल प्रातः ६।५३ बजेतक ११ पू० षा० दिनमें ९।३० बजेतक |१२ सोम

दशमी 🦙 १०।५८ बजेतक एकादशी 🔑 १ । ३ बजेतक मंगल उ० षा० '' १२।४ बजेतक १३ द्वादशी *"*२।५४ बजेतक बुध श्रवण 😗 २।२६ बजेतक १४ 🕠

धनिष्ठा सायं ४।३१ बजेतक १५ 🕠

त्रयोदशी सायं ४।२६ बजेतक । गुरु शतभिषा 🗤 ६। ७ बजेतक १६ चतुर्दशी ग५ । ३० बजेतक शुक्र अमावस्या ,, ६ । ५ बजेतक पू० भा० रात्रिमें ७।१६ बजेतक १७ 🕠 शनि

सं० २०७५, शक १९३९-१९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र

प्रतिपदा सायं ६।८ बजेतक रवि

उ०भा० रात्रिमें ७।५४ बजेतक १८ मार्च

१९ "

द्वितीया '' ५ । ४४ बजेतक | सोम | रेवती 💮 '' ८ । ४ बजेतक मंगल अश्विनी ११७।४५ बजेतक २० " २१ "

भरणी 🗤 ७। १ बजेतक

पंचमी 🗤 १। ३९ बजेतक | गुरु कृत्तिका सायं ५।५७ बजेतक |२२ 🗥

षष्ठी 😗 ११।३९ बजेतक रोहिणी 😘 ४। ३८ बजेतक शुक्र मृगशिरा दिनमें ३।६ बजेतक २४ '' शनि सप्तमी '' ९। २६ बजेतक

गुरु

शुक्र

शनि

अष्टमी प्रात: ७।४ बजेतक रिव

दशमी रात्रिमें २।१६ बजेतक सोम

एकादशी '' १२।० बजेतक 🛮 मंगल

द्वादशी ''९।५३ बजेतक बुध

त्रयोदशी '' ८।२ बजेतक

चतुर्दशी सायं ६। ३१ बजेतक

पूर्णिमा गप्।२४ बजेतक

तृतीया ११४। ४४ बजेतक चतुर्थी दिनमें ३। २१ बजेतक बुध

आर्द्रा ११ १। २८ बजेतक

पुनर्वसु 😗 ११। ४७ बजेतक

पुष्य १११०।१० बजेतक

मघा प्रातः ७। २३ बजेतक

पू०फा० 🕶 ६। २५ बजेतक

हस्त रात्रिशेष ५। ३४ बजेतक

आश्लेषा 🗤 ८ । ४० बजेतक | २८ 🗤

उ० भा० का सूर्य दिनमें १०।९ बजे।

२३ "

२५ "

२६ "

२७ "

२९ "

३० ग

दिनांक नवरात्रारम्भ 'विरोधकृत' संवत्सर, मूल रात्रिमें ७। ५४ बजेसे

रात्रिमें २।१९ बजे।

रात्रिमें ९।२३ बजे।

रंगपंचमी।

मीनराशि दिनमें १२।५८ बजेसे, अमावस्या।

शक संवत् १९४० प्रारम्भ।

श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीरामनवमीव्रत।

(सबका), मूल दिनमें १०।१० बजेसे।

प्रदोषव्रत, मूल समाप्त प्रात: ७। २३ बजे।

**कर्कराशि** प्रात: ६।१२ बजेसे।

सिंहराशि दिनमें ८।४१ बजेसे।

१।५८ बजे, पंचकारम्भ रात्रिमें ३।२९ बजे, वसन्तऋतु प्रारम्भ, खरमासारम्भ। भद्रा सायं ४। २६ बजेसे रात्रिशेष ४। ५९ बजेतक।

पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)। कुम्भराशि रात्रिमें ३। २९ बजेसे, प्रदोषव्रत, मीन-संक्रान्ति रात्रिमें

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

**मेषराशि** रात्रिमें ८।४ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ८।४ बजे।

श्रीगणेशचतुर्थीवृत, सायन मेषका सूर्य रात्रिमें १२।९ बजे।

मिथुनराशि रात्रिमें ३।५३ बजेसे, श्रीस्कन्दषष्ठी।

मत्स्यावतार, भद्रा रात्रिमें ४। ३ बजेसे, गणगौरव्रत, मूल रात्रिमें ७। ४५ बजेतक।

भद्रा दिनमें ३।२१ बजेतक, वृषराशि रात्रिमें १२।४६ बजेसे, वैनायकी

भद्रा दिनमें ९। २६ बजेसे रात्रिमें ८। १५ बजेतक, महानिशापूजा।

भद्रा दिनमें १।८ बजेसे रात्रिमें १२।० बजेतक, कमदा एकादशीव्रत

भद्रा सायं ६। ३१ बजेसे, कन्याराशि सायं ६। ६ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा।

भद्रा प्रातः ५।५८ बजेतक, पूर्णिमा, श्रीहनुमञ्जयन्ती, वैशाख स्नानारम्भ।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें ३।६ बजेसे रात्रिमें २।४७ बजेतक, पू० भा० का सूर्य

तुलाराशि दिनमें ९।५८ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय

सर्वत्र होली ( वसन्तोत्सव ), कन्याराशि रात्रिमें ४। २१ बजेसे।

भद्रा रात्रिमें ९।५५ बजेसे, मूल प्रात: ६।५३ बजेतक।

धनुराशि रात्रिमें ४। २५ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमीव्रत। **भद्रा** दिनमें १०।५८ बजेतक, **मकरराशि** सायं ४।९ बजेसे।

भद्रा रात्रिमें ३।४९ बजेसे, वृश्चिकराशि सायं ६।४ बजेसे। भद्रा सायं ४। २८ बजेतक, मूल रात्रिमें २। १२ बजेसे।

कृपानुभूति

# माँ नर्मदाकी कृपा

घरपर नहीं थे, सो मैं नर्मदाजीमें स्नानहेतु महाराजपुरके घाटपर

चला गया। मुझे उस कठिनाईके समयमें किसी मार्गदर्शककी

तलाश थी, इसीलिये मैं अपने मित्रके यहाँ गया था। पता नहीं

मुझे ऐसा क्यों लग रहा था कि सब कुछ ठीक हो जायगा।ऐसा

बाद फिर अपनी माँ नर्मदाजीकी गोदमें हूँ, अब यही मेरी रक्षा

दिया और उसमेंसे मुझे माँ नर्मदाका यह निर्देश सुनायी पड़ा

कि सच्चे व्यक्तिको कभी डरना नहीं चाहिये। तुम्हें दूसरोंसे

सहायता लेनेके बदले स्वयं ही इस सम्बन्धमें प्रयास करना

चाहिये। मैंने पूछा मुझे क्या करना चाहिये? तो उत्तर मिला

इसके पश्चात् मैं स्नानकर अपने मित्रके घर पहुँचा।

हिन्दु धर्ममें यह मान्यता है कि नर्मदाजीके जलके दूसरे दिन मेरे वापस आनेपर मुझे स्थितिकी जानकारी केवल दर्शनमात्रसे श्रद्धालुओंके पाप नष्ट हो जाते हैं। मेरे हुई। मैं अपने एक मित्र, जो मण्डला महाराजपुरके निवासी थे

पूज्य पितामह, पिता एवं माँ नर्मदाके प्रति अपार श्रद्धा तथा रेंजरके पदपर कार्यरत थे, उनसे सहायता एवं परामर्शहेतु उनके घर गया। सुबहके तकरीबन ९ बजे थे, उस समय वे

रखते थे और उनके इच्छानुसार ही मरणोपरान्त उनकी अस्थियाँ मण्डला जाकर नर्मदाजीमें मेरे द्वारा प्रवाहित की गयी थीं।

सन् १९७५ ई० की बात है, मैं वन विभाग (म०प्र०)-में रेंजरके पदपर कार्यरत था। विभागद्वारा मुझे वर्ष १९७२ से

१९७६ की अवधिमें सहायक वन अधिकारीके पदपर प्रतिनियुक्तिमें भेजा गया। उस समय मैंने बाँसकी तौलहेत् ही विचार करते-करते मेरे मनमें आया कि मैं आज २१ वर्षों अपनायी गयी त्रुटिपूर्ण पद्धतिके सम्बन्धमें शासनको रिपोर्ट की थी, जिसमें गलत पद्धतिके कारण शासनको प्रतिवर्ष १४

करेंगी और ऐसा सोचते ही मैंने मन-ही-मन प्रार्थना की कि हे लाख रुपयेकी रॉयल्टीकी हानि हो रही थी। मेरी इस कार्यवाहीसे माँ! मुझे उचित मार्गदर्शन दीजिये। तत्कालीन अधिकारी नाराज हो गये और मुझे कई प्रकारसे प्रताडित करने लगे। इसमें सबसे पहले मार्च १९७५ में बिना वहाँ उनकी पत्नीके आग्रहपर मैं भोजन करने बैठ गया। कारण बताये मुझे निलम्बित किया गया, जीवन-निर्वाह भोजन करते हुए मेरे अन्तर्मनमें नर्मदाजीका जल दिखायी

भत्तेकी कोई राशि नहीं दी गयी। मेरे विरुद्ध कई विभागीय तथा आपराधिक प्रकरण भी एक साथ प्रारम्भ किये गये। उसी समय जून, ७५ में आपातकालकी घोषणा केन्द्र सरकारद्वारा किये जानेसे शासकीय अधिकारियोंको असीमित अधिकार

मिल गये थे, जिसका उपयोग करते हुए उन्होंने सी०बी०आई० बम्बईकी जाँच एजेन्सीको मेरे विरुद्ध प्रयुक्त किया। दिनांक २४ दिसम्बर १९७५ को मेरे निवास-गृह बालाघाट, कपुरधा एवं छिन्दवाडा इत्यादि कई स्थानोंमें एक साथ सी०बी०आई०

द्वारा तलाशियाँ ली गयीं। मेरी आर्थिक स्थिति उस समय ऐसी थी कि परिवारके दो वक्तके भोजनकी भी समस्या थी।

४० सदस्यीय टीमके द्वारा की। मैं उस समय किसी कार्यसे रायपुर गया हुआ था। घरकी आर्थिक स्थिति उन्हें तलाशीके बाद स्पष्ट हो गयी। उन्होंने मेरी केस फाइलोंको पढकर यह

ऐसे कठिनाईके समयमें सगे-सम्बन्धियोंने भी साथ छोड दिया था। बालाघाटको तलाशी कार्यवाही सी०बी०आई० के पुलिस अधिकारीने प्रात: ६ बजेसे सायं ५ बजेतक अपनी

कि तुम्हें अपनी सी०बी०आई० तलाशीकी रिपोर्ट शासनको देनी चाहिये। मैंने पूछा कि इसपर क्या सहायता मिलेगी? तब मुझे उत्तर मिला कि अपने पत्रमें बाँसतौल-पद्धति बदलावका पूरा विवरण लिखकर भेजो, ताकि नाराजीके वास्तविक

भोजनोपरान्त मैंने पत्र लिखना प्रारम्भ किया, मुझे लगा जैसे नर्मदाजी स्वयं अपनी प्रेरणासे मुझसे वह पत्र

लिखवा रही हैं। पत्र दिनके दो बजेतक पूर्ण हो चुका

कारणका पर्दाफाश हो सके।

था। इसके बाद मेरे मित्र आये, मैंने उनसे इस विषयमें चर्चा की और वापस बालाघाट पहुँचकर माँ नर्मदाद्वारा निर्देशित कार्यवाही की। अन्तमें मुझे पूर्णतया निर्दोष मानकर

सहायक वन-संरक्षक एवं डी॰एफ॰ओ॰ पदपर मेरी

पाया कि प्रार्थीने कोई अपराध नहीं किया है। उन्होंने मेरी पदोन्नति निर्धारित तिथियोंसे कर मुझे एरियर राशि १८ पत्नीसे अपनी सान्त्वना केवल आँसुओंके द्वारा ही व्यक्त की प्रतिशत ब्याजसहित भुगतान की गयी। इसे में माँ नर्मदाकी 

पढो, समझो और करो संख्या २ ] पढ़ो, समझो और करो चाहिये। देखें क्या होता है? सुबह चश्मेकी दूकानपर धर्मकी कमाई खोकर भी वापस आ गयी गया, दुकानदार भगवानुको अगरबत्ती कर रहा था। अन्दर रातका समय था, मैं पी०सी०ओ० में बात करने जा बुलाये, चश्मेमें काँच लगाये। मैंने पूछा कितने पैसे दुँ? रहा था। मेरी साइकिलपर एक बैग टँगा था, मैंने उसे बोला कुछ नहीं देना है। मुझे ऐसे लगा भगवान् मेरे पीछे खींचकर देखा कि इसके फीते मजबूत तो हैं। उसके बाद खड़े हैं और देख रहे हैं-मुझसे तो झगड़ा करके घर बैठे बाहर निकल पड़ा।पी०सी०ओ० में बात करके वापस घर ही बैग मँगवा लिया, अब देखें खुद क्या करता है। मैं आया। साइकिलसे बैग निकालना चाहा तो देखा बैग नहीं दुविधामें पड़ गया, समझमें नहीं आ रहा था, क्या करूँ ? है, सन्न रह गया। भगवान् तथा शास्त्रोंपर मेरी बड़ी निष्ठा चश्मा कवरमें रख रहा था—कपड़ेका कवर था, कई है। मैंने बरामदेकी दीवारपर एक बड़ा चित्र चिपकाया हुआ जगहसे फटा था—मैंने पूछा, चश्मेका कवर है ? बोला था—शेषनागकी शय्यापर भगवान् विष्णु शयन किये हुए हैं 'है'। मैंने कहा दीजिये। दस रुपये बताये—लेकर घरपर और लक्ष्मीमाता चरण दबा रही हैं। मेरा खुन खौल उठा। आ गया और आकर भगवानुको प्रणाम किया और कहा— मैंने भगवान्से कुछ देरतक झगड़ा किया और गुस्सेमें कहा हे नाथ! मैंने आपको बहुत ही बुरा-भला कहा, हे प्रभु! कि आप तो जानते ही हैं कि मैं कोई भी काम गलत नहीं मुझे क्षमा करें। - जगदीश प्रसाद शर्मा (पारीक) करता तथा न गलत तरीकेसे धन-उपार्जन ही करता हूँ। (२) धर्मपूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करता हूँ । फिर भी मेरा बैग मेरी जिन्दगी महक उठी में हूँ मिलड्रेड हाँडॉर्फ, प्राथमिक विद्यालयमें क्यों गुम हो गया ? शास्त्रमें आपका ही कथन है कि धर्मपूर्वक निर्वाह करनेवालेकी धन-सम्पत्ति न तो खोती है न चोरी संगीतका अध्यापक। तीस सालोंसे मैं बच्चोंको पिआनो होती है। फिर मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ ? मैं कुछ नहीं सिखा रहा हूँ। मेरे हाथसे कई होनहार बच्चे गुजरे, जानता, आपको एक घण्टेका समय देता हूँ। एक घण्टा मैं जिन्होंने आगे चलकर संगीतमें खूब नाम कमाया, लेकिन घरपर रहूँगा, मेरा बैग मेरे पास घरपर ही आ जाना चाहिये। मैं हमेशा सपने देखा करता था कि कोई ऐसा यदि नहीं आया तो—हे भगवन्! तू झुठा, तेरा शास्त्र झुठा। **'एकमेवाद्वितीयम्'** विद्यार्थी मेरी झोलीमें प्रभु डाल दें, करीब पौन घण्टे बाद मेरे एक परिचित श्रीअजय जिससे मेरा भी नाम रोशन हो जाये! अग्रवाल हमारे घरपर आये और मुझसे पूछा भाईजी! प्रभुने कुछ किया भी ऐसा ही, सचमुच किया आप बाहर कहीं गये थे ? आपका कोई सामान खो गया है क्या?" उन्होंने किया यह कि मेरे पल्ले एक ऐसा क्या ? मैंने कहा—हाँ, मेरा बैग खो गया है। उसने बनियानके विद्यार्थी बाँध दिया, जिसे संगीतका ककहरा सिखाना भी मेरे लिए एक पहेली बन रहा था। अन्दरसे बैग निकालकर मुझे देते हुए कहा—होमियोपैथिक डॉक्टर हाबू दाके यहाँ एक बच्चा इसे लेकर आया और वह था ११ सालका रॉबी, जिसे पहले रोज उसकी बोला—डॉक्टर साहब! बाहर यह बैग मिला है, लीजिये। माँ पिआनोकी कक्षामें छोड़ने आयीं। मेरे हिसाबसे बैगके अन्दर डायरीमें आपका नाम देखकर डॉक्टर साहब पिआनो सीखना शुरू करनेके लिए उसकी उम्र निकल बोले, इनको तो मैं जानता हूँ। मैंने कहा—डॉक्टर साहब! चुकी थी; जब मैंने इस बातकी भनक उसके कानमें डाली मैं उन्हींके घर जानेवाला हूँ; आप चाहें तो मुझे दे सकते तो वह बोल उठा, 'सर, हमेशासे मेरी माँका यही सपना हैं। मैंने बैग खोलकर देखा—सब ठीक-ठाक है, पर था कि वे मुझे पिआनो बजाते सुनें, जानता हूँ, उमर मेरी चश्मेके दोनों शीशे निकले हुए थे। मनमें विचार आया इसे कुछ ज्यादा है, लेकिन मैं वादा करता हूँ कि जी-तोड लगानेके तो रुपये लगेंगे! मगर हिसाबसे तो नहीं लगने मेहनत करूँगा, अपनी माँका दिल छोटा नहीं करूँगा,

भाग ९२ नहीं करूँगा सर! आप ही मेरे मददगार बनिये कृपया।' झण्डा नहीं फहराना चाहता था, यानी, रॉबीको किसी उसकी यह विनती मैं टाल न सका। लेकिन उसी लायक न बना पाना मेरी ही हार होती…। रोज मैं समझ गया कि रॉबीको संगीत सिखाना शायद दो महीने गुजर गये, शुरू-शुरूमें कभी-कभार चुनौतीको चुनौती देना है! सच मानिये, मेरे अध्यापनके रॉबीको मैंने याद भी किया, लेकिन फिर वह दिमागसे इतने लम्बे अरसेमें मेरा वास्ता संगीतके ऐसे विद्यार्थीसे एकदम उतर गया। अब मेरे छात्र अपना पहला कार्यक्रम प्रस्तृत करनेको तैयार थे; मैंने हर एकके घरपर कार्यक्रमका कभी नहीं पडा, जिसके लिए संगीतकी दुनियामें पहला कदम रखना भी पहाड लाँघने-जैसा था। ईश्वरने उसके परचा भिजवानेकी सूचना दफ्तरमें दे दी। लौटती डाकसे हाथोंमें न लयका दामन थमाया था, न तालका, इसलिये रॉबीकी चिट्ठी आयी कि वह भी कार्यक्रमका हिस्सा बनना चाहता है। मैंने उसे लिखा कि कार्यक्रममें वर्तमान '''फिर भी, रोज बिना नागा उसकी माँ उसे विद्यालयके फाटकतक पुरानी, खटारा गाड़ीमें छोड़ जाती। छात्र ही भाग ले रहे हैं, और चूँकि वह दो महीनोंसे नहीं रॉबी पिआनोपर रोज वही समान, सरल संगीतका आया, इसलिए वह योग्य नहीं ठहर सकता। इस बार अभ्यास करने लगा। उसके साथ आये दूसरे बच्चे तो उसका फोन आया। उसकी बेबसीसे मैं पसीजने लगा, आगे बढ़ गये, लेकिन वह पूरे-पूरे पन्द्रह दिन उसीमें जब उसने बताया कि उसकी माँ बहुत बीमार थीं, और लगा रहा, हर पखवाड़े अपने छात्रोंकी एक छोटी-सी चूँकि घरपर उन दोनोंके सिवाय और कोई नहीं है, परीक्षा लेनेका मेरा नियम है। कहना न होगा कि एकके इसलिए वह आनेसे एकदम मजबूर था, साथ ही उसने सिवाय सभी उत्तीर्ण हो गये। मेरे माथेकी सिलवटें उसने कहा—सर, यकीन मानिये; मैं रोज, हर रोज बगलके फौरन पढ़ लीं; कुछ मायूस, लेकिन बड़े विश्वासके साथ घरमें जाकर पिआनोका अभ्यास करता हूँ। बडे भले हैं वह मुझसे बोला—सर! मेरी माँ कभी मेरा पिआनो जरूर वे लोग, कभी-कभी मेरी मदद भी कर दिया करते हैं, सुनेंगी। मैं उसकी बात पकड़ न पाया, लेकिन उसकी अब हाथ भी मेरे कुछ सध गये हैं। मैं सकतेमें आ गया। उस उमंगने मेरे दिलपर हाथ रख दिया और मैंने भी ठान यकायक मुँहसे निकल पड़ा, अभ्यास! मैं आगे कहना लिया कि इस बच्चेको मैं कुछ सिखाकर ही छोड़ँगा…। चाहता था कि दूसरी तरफसे रुआँसी, गिड्गिडाती आवाज आयी—सर, सर! इस कार्यक्रममें मुझे बजानेकी क्या इतना सरल था रॉबीको कुछ भी सिखाना? एक रोज मैंने उसकी माँसे बात करनेकी भी सोची, लेकिन अनुमति दे दें, हाथ जोड़ता हूँ आपके। मेरा इसमें बजाना न जाने क्यों, हिम्मत ही न जुटा पाया। बेटेके साथ वे कभी बहुत, बहुत जरूरी है। अब तो मैं बड़े पसोपेशमें पड़ कक्षातक आयीं ही नहीं! रॉबीको छोड़ते और लेते वक्त गया, फिर भी कहना चाहता था कि नहीं, यह मुमिकन हमेशा मैंने उन्हें गाड़ीमें बैठे इन्तजार करते ही देखा। रोज नहीं होगा रॉबी, अगली बार हम कोशिश कर सकते हैं, की बजाय न जाने कैसे मैंने अपने-आपको कहते मुझे वे दूरसे ही देखकर मुसकुरातीं, फिर हाथ हिलाकर अपनी पुरानी-धुरानी गाड़ी आगे बढ़ा देतीं। इनकी माली सुना—ठीक है, कोशिश कर सकते हैं। दूसरी तरफसे हालत खस्ता है, फिर भी अपने बेटेको संगीतकार बनाना आती हुई 'शुक्रिया-शुक्रिया' की बौछारसे मैं जगा! अब क्या करूँ! क्या करूँ "का हौआ मेरे पीछे पड़ चाहती हैं, सोच-सोचकर मैं कभी भी बढ़कर उनके बेटेकी अयोग्यताका जिक्र उनसे न कर पाया"। गया। मन जब जरा शान्त हुआ तो उस बच्चेके लिये और एक दिन रॉबीने कक्षामें आना बन्द कर दयाका सोता फूट पड़ा—बेचारा, अकेली जान, माँ सख्त दिया। एक दफा मेरे मनमें ख्याल आया कि फोन करके बीमार, तिसपर कह रहा है कि कहीं जरूर रोज अभ्यास पूछ लूँ, लेकिन फिर सोचा कि हो न हो, संगीतकी भी करता रहा है! लेकिन लेकिन फिर वही दानव 'लेकिन' आ खड़ा होता। आखिर मैंने यह उपाय खोज दुनियासे उसका दूर-दूरका वास्ता नहीं है, समझकर ही रॉबीने कक्षा छोड़ दी हो। दिलके किसी कोनेमें मैं उसके निकाला कि चूँकि वह औरोंके साथ तो बजा नहीं न आनेसे खुश भी हो रहा था—मैं अपनी अयोग्यताका सकता, इसलिये उसे एकदम अन्तमें बजानेके लिये

मनन करने योग्य

## परस्त्रीमें आसक्ति मृत्युका कारण होती है

## हो गया। अन्तमें व्याकुल होकर रात्रिमें द्रौपदी भीमसेनके

द्रौपदीके साथ पाण्डव वनवासके अन्तिम वर्ष 'अज्ञातवास'के समयमें वेष तथा नाम बदलकर राजा विराटके यहाँ रहते थे। उस समय द्रौपदीने अपना नाम सैरन्ध्री रख लिया था और विराटनरेशकी रानी सुदेष्णाकी दासी बनकर वे किसी प्रकार समय व्यतीत कर रही थीं। राजा विराटका प्रधान सेनापित कीचक रानी सुदेष्णाका भाई था, एक तो वह राजाका साला था, दूसरे सेना उसके अधिकारमें थी, तीसरे वह स्वयं प्रख्यात बलवान् था और उसके समान ही बलवान् उसके एक सौ पाँच भाई उसका अनुगमन करते थे। इन सब कारणोंसे कीचक निरंकुश तथा मदान्ध हो गया था। वह सदा मनमानी करता था। राजा विराटका भी उसे कोई भय या संकोच नहीं था। उलटे राजा ही उससे दबे रहते थे और उसके अनुचित व्यवहारोंपर भी कुछ कहनेका साहस नहीं करते थे। दुरात्मा कीचक अपनी बहन रानी सुदेष्णाके भवनमें एक बार किसी कार्यवश गया। वहाँ अपूर्व लावण्यवती दासी सैरन्ध्रीको देखकर उसपर आसक्त हो गया। कीचकने नाना प्रकारके प्रलोभन सैरन्ध्रीको दिये। सैरन्ध्रीने उसे समझाया— 'मैं पतिव्रता हूँ। अपने पतियोंके अतिरिक्त किसी पुरुषकी कभी कामना नहीं करती। तुम अपना पापपूर्ण विचार त्याग दो।' लेकिन कामान्ध कीचकने उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी बहिन सुदेष्णाको भी सहमत कर लिया

नृत्य एवं संगीत सीखनेके काम आती थी। वहाँ दिनमें कन्याएँ गान-विद्याका अभ्यास करती थीं, किन्तु रात्रिमें वह सुनी रहती थी। कन्याओं के विश्रामके लिये उसमें एक कि वे सैरन्ध्रीको उसके भवनमें भेजेंगी। रानी सुदेष्णाने सैरन्ध्रीके अस्वीकार करनेपर भी अधिकार प्रकट करते हुए डॉंटकर उसे कीचकके भवनमें जाकर वहाँसे अपने लिये कुछ सामग्री लानेको भेजा। सैरन्ध्री जब कीचकके भवनमें पहुँची, तब वह दुष्ट उसके साथ बलप्रयोग करनेपर उतारू हो गया। उसे धक्का देकर वह भागी और राजसभामें पहुँची।

परंतु कीचकने वहाँ पहुँचकर राजा विराटके सामने ही केश पकड़कर उसे भूमिपर पटक दिया और पैरकी एक ठोकर लगा दी। राजा विराट कुछ भी बोलनेका साहस नहीं कर सके। सैरन्ध्री बनी द्रौपदीने देख लिया कि इस दुरात्मासे

विशाल पलंग पड़ा था। रात्रिका अन्धकार हो जानेपर भीमसेन चुपचाप आकर नाट्यशालाके उस पलंगपर सो रहे। कामान्ध कीचक सज-धजकर वहाँ आया और अँधेरेमें पलंगपर

विमात वरा होत्र भी। इन्हों त्व प्डम्करें । कोत्तर अधेर शेष्ठ भी द्वारा वर्ष को का का कि प्रमान के विभाग के कि

बैठकर, भीमसेनको सैरन्ध्री समझकर उनके ऊपर उसने हाथ रखा। उछलकर भीमसेनने उसे नीचे पटक दिया और वे उस दुरात्माकी छातीपर चढ़ बैठे। कीचक बहुत बलवान् था। भीमसेनसे वह भिड गया। दोनोंमें मल्लयुद्ध होने लगा; किंतु भीमने उसे शीघ्र पछाड दिया, उसका गला घोंटकर उसे मार डाला और फिर उसका मस्तक तथा हाथ-पैर इतने जोरसे दबा दिये कि वे सब धड़के भीतर घुस गये। कीचकका शरीर एक डरावना लोथड़ा बन गया। प्रात:काल सैरन्ध्रीने ही लोगोंको दिखाया कि उसका अपमान करनेवाला कीचक किस दुर्दशाको प्राप्त हुआ है। परंतु कीचकके एक सौ पाँच भाइयोंने सैरन्ध्रीको पकड़कर बाँध लिया। वे उसे कीचकके शवके साथ चितामें जला देनेके उद्देश्यसे श्मशान ले चले। सैरन्ध्री क्रन्दन करती जा रही थी। उसका विलाप सुनकर भीमसेन नगरका परकोटा कूदकर श्मशान पहुँचे। उन्होंने एक वृक्ष उखाड़कर कन्धेपर उठा लिया और उसीसे कीचकके सभी भाइयोंको यमलोक भेज दिया। सैरन्ध्रीके बन्धन उन्होंने काट दिये। अपनी कामासक्तिके कारण दुरात्मा कीचक मारा गया और पापी भाईका पक्ष लेनेके कारण उसके एक सौ पाँच

पास गयी और रोकर उन्होंने भीमसेनसे अपनी व्यथा कही।

भीमसेनने उन्हें आश्वासन दिया। दूसरे दिन सैरन्ध्रीने भीमसेनकी

सलाहके अनुसार कीचकसे प्रसन्नतापूर्वक बातें कीं और

राजा विराटकी नाट्यशाला अन्तः पुरकी कन्याओं के

रात्रिमें उसे नाट्यशालामें आनेको कह दिया।

## श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र ( मोटा टाइप ) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर

<mark>ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें</mark> <mark>भगवान् शिवके उपासकोंके</mark> लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य **₹२५०, सामान्य संस्करण** 

<mark>(कोड 789) मूल्य ₹ २००, (कोड 1286)</mark> मूल्य ₹ २२५ गुजराती, (कोड 975) मूल्य ₹ २०० ते<mark>लुगु</mark>,

<mark>(कोड 1937) बँगला मूल्य ₹ १६०, (कोड 1926)</mark> मूल्य ₹ १७५ कन्नड़, (कोड 2043) मूल्य **₹ ३०० तमिल भी।** मू०₹ कोड मू०₹ कोड मू०₹ कोड पुस्तक-नाम पुस्तक-नाम पुस्तक-नाम शिवचालीसा-पॉकेट साइज 2020 शिवमहापुराण-मूलमात्रम् 204 1156 एकादश रुद्र (शिव )- चित्रकथा 40 228 8 1985 लिङ्गमहापुराण-सटीक ॐ नमः शिवाय शिवचालीसा-लघु 220 204 1185 2 24 श्रीशिवसहस्त्र...नामावलि.. <mark>1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर</mark>-सानुवाद हर हर महादेव 1599 34 1343 24 90 <mark>1899</mark> श्रावणमास-माहात्म्य *ः* 32 1367 श्रीसत्यनारायणव्रतकथा 230 अमोघ शिवकवच ४

## चैत्र नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये

शिवमहिम्न:स्तोत्र

563

80

,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)

**1954** शिव-स्मरण

कोड

1563

1436

१५

1627

,, मूल, गुटका (विशिष्ट संस्करण)

रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद

30

मूल्य ₹

60

24

34 22

44 80

### 'श्रीरामचरितमानस'के विभिन्न संस्करण

#### मूल्य ₹ कोड पुस्तक-नाम पुस्तक-नाम

1	1389	<b>श्रीरामचरितमानस</b> —बृहदाकार (वि०सं०)	६५०	82	<b>श्रीरामचरितमानस</b> —मझला साइज, सटीक,	
	80	🕠 बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५५०		[बँगला, गुजराती भी]	१३०
	1095	🕠 ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	330	1318	🥠 रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित (मझला भी)	३००
	81	🕠 ग्रन्थाकार–सटीक, सचित्र, मोटा टाइप,		83	🕠 मूलपाठ,ग्रन्थाकार	
		[ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, नेपाली			[गुजराती, ओड़िआ भी]	१३०
		गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२६०	84	🕠 मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	८०
	1402	🕠 सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	200	85	,, मुल, गृटका [गुजराती भी]	40

#### 🕠 सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप [गुजराती भी] 🕠 मूलपाठ, बृहदाकार 1349 300

1544

## नेत्य पाठके लिये 'श्रीदर्गामप्तशती'के विभिन्न संस्करण

1567	<b>श्रीदुर्गासप्तशती</b> —मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	५०	118	-			
876	🕠 मूल, गुटका	१५		(गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)			
4046		\ \ -	0//	7	П		

840

**४०** | **866** ,, केवल हिन्दी

1281	<mark>,, सानुवाद (राजसंस</mark> ्करण)	५५	1161	"	"	मोटा टाइप, सजिल्द
489	🕠 सजिल्द, गुजरातीमें भी	५०	1774	देवीस	गोत्ररत्ना	कर

नवीन प्रकाशन -अब उपलब्ध

Sarala Gītā (with English Translation & 2118 कौटुम्बिक संस्कार-कथा [ **मराठी** ]

2128 24 Transliteration), कोड 2099 हिन्दीमें भी 35 2115 कथा तुमच्या-आमच्या [ **मराठी** ] २५ हरिवंशपुराण ग्रन्थाकार [ गुजराती ] 2098 374 2108 अपिरामि अन्ताति [ तमिल ] एक संतकी वसीयत [ असिया ] 2126 3 श्रीकन्द षष्टि कवचम् [ तमिल ] 4 श्रीब्रह्मचैतन्य गोंदवलेकर महाराज [ मराठी ] 2113 30

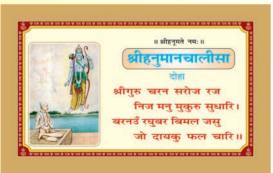
खुल गया है—भोपाल जं॰ प्लेटफार्म नं॰ १ (म॰प्र॰) रेलवे स्टेशनपर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।



### रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

### LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

### नवीन-प्रकाशन-अब उपलब्ध



श्रीहनुमानचालीसा (कोड 2121) सचित्र, रंगीन, पुस्तकाकार, बेडिआ, मोटा टाइप, मृल्य ₹ १५,



श्रीदुर्गाचालीसा (कोड 2120) सचित्र, रंगीन, पुस्तकाकार, बेडिआ, मोटा टाइप, मुल्य ₹ १५,



## आयुर्वेदिक ओषधियाँ उपलब्ध हैं

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान (गीताप्रेस, गोरखपुर व्यवस्थाद्वारा संचालित) पो॰ स्वर्गाश्रममें शुद्ध गंगाजलके योगसे, वैज्ञानिक तकनीकसे योग्य वैद्योंकी देख-रेखमें प्राकृतिक जड़ी-बूटियोंद्वारा नाना प्रकारकी आयुर्वेदिक औषिधयोंका निर्माण होता है, जिसे वैज्ञानिक तकनीकसे सीलबन्द किया जाता है। ये औषिधयाँ गीताप्रेस, गोरखपुरकी अनेक शाखाओंमें एवं अनेक स्टेशन-स्टालोंपर भिन्न-भिन्न परिमाणमें उपलब्ध हैं। अधिक जानकारीके लिये निम्नलिखित पतेपर प्रातः 8:30 से दोपहर 12:00 और दोपहर 1:00 से सायं 5:00 बजेके बीचमें सम्पर्क करना चाहिये—

पो०-स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश ( उत्तराखण्ड ), पिन 249304; फोन नं० 0135-2440054 Whatsapp No.-7088002303; e-mail : gbas.gitabhawan@gmail.com; web site-gitapressayurved.com ( गोबिन्दभवन-कार्यालय कोलकाताका संस्थान)

### 'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१८ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१८ ई० का विशेषाङ्क 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रजिस्ट्रीसे पुन: मँगवानेकी कृपा करेंगे।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन एवं वी०पी०पी०से पुनः अङ्क मँगवाने-हेतु e-mail: kalyan@gitapress.org. / 09235400242/244 पर सम्पर्क करना चाहिए। इसके अतिरिक्त 9648916010 पर SMS एवं Whatsapp की सुविधा भी उपलब्ध है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)